मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 97 ● वर्ष 11, अंक 4,● जून 2021 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

धनी किसान-कुलक आन्दोलन का हालिया घटनाक्रम और "किसान-मज़दूर एकता" के नारे की असलियत 9

पूँजीवादी किसान, आढ़तिये, व्यापारी व बिचौलिये किस तरह गाँव के ग़रीबों को लूटते हैं? 7

चे ग्वेरा को याद करते हुए कुछ कविताएँ 20

लाखों लोगों को मौत के हवाले करके फ़ासिस्ट सत्ताधारी फिर अपने चुनावी खेल में लग गये हैं!

उन्हें भरोसा है कि उनका झूठा प्रचार और नफ़रत की अफ़ीम फिर सर चढ़कर बोलेंगे और लोग सबकुछ भूल जायेंगे!

इनके ख़ूनी इरादों को नाकाम करने के लिए एकजुट होकर उठ खड़ा होना होगा!

सम्पादक मण्डल

पिछले दिनों प्रसिद्ध अन्तरराष्ट्रीय ऑनलाइन समाचार पत्रिका 'द कन्वर्सेशन' ने कोरोना महामारी से निपटने वाले दुनिया के सबसे ख़राब नेताओं पर एक रपट छापी। इसमें दुनिया के 5 ऐसे सरकार के प्रमुखों का जिक्र है जो अपने देश में महामारी को निपटने में सबसे बुरी तरह नाकाम रहे। कहने की ज़रूरत नहीं कि इसमें सबसे आगे विश्वगुरू भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी हैं। उनके पीछे ब्राज़ील के ज़ैर बोलसोनारो, बेलारूस के अलेक्सान्द्र लुकाशेंको, पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप और मैक्सिको के राष्ट्रपति एंड्रेस ओब्राडोर का नाम है। इन सभी ने अपनी मूर्खता, लापरवाही और लोगों की जान को कुछ न समझने के चलते अपने मुल्क में महामारी को भयंकर जानलेवा रूप लेने दिया। इन सभी ने बार-बार चेतावनियों को अनसुना करके महामारी को गम्भीरता से नहीं लिया, विज्ञान की अवहेलना की और महामारी से लड़ने के लिए अनिवार्य स्वास्थ्य सुविधाओं और क़दमों पर ज़रूरी ध्यान नहीं दिया।

अपने देश के सत्ताधारियों की करतूतों का सबसे विनाशकारी नतीजा झेला भारत की जनता ने। लाखों लोग मौत के मुँह में समा गये, लाखों परिवार उजड़ गये, हज़ारों बच्चे बेसहारा हो गये। एक करोड़ से ज़्यादा लोगों ने अपना रोज़गार खो दिया और करोड़ों लोग लोग आर्थिक तबाही के कगार पर पहुँच गये हैं। एक ऐसी मानवीय और सामाजिक आपदा हमारे सामने खड़ी है, जिसका सामना करने के लिए न हमारी व्यवस्था तैयार है और न ही हमारा समाज। मोदी सरकार की अनर्थकारी और लुटेरी नीतियों के कारण अर्थव्यवस्था महामारी के पहले ही गर्त में जा चुकी थी, महामारी के दौरान सरकारी क़वायदों ने इसका पूरा भट्टा बैठा दिया है। महामारी दुनिया के तमाम देशों के लिए थी, मगर ऐसी आर्थिक बदहाली और कहीं नहीं आयी। लगातार दूसरे साल भारत का सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) बढ़ने के बजाय बुरी तरह सिकुड़ गया। इन हालात में आने वाले दिन मेहनतकशों और निम्न मध्य वर्ग के लोगों के लिए भयावह बेरोज़गारी और बदहाली लेकर आने वाले हैं।

कोरोना महामारी की दूसरी लहर बीते साल गर्मियों के अन्त तक ही दुनिया के कुछ हिस्सों में विकसित हो चुकी थी। बेल्जियम, ईरान, चेक गणराज्य, दक्षिण कोरिया, जर्मनी, स्पेन, अमेरिका आदि देशों के कुछ हिस्सों में इसका फैलना शुरू हो गया था। इस साल की शुरुआत तक दूसरी लहर का संकट जगजाहिर हो चुका था और दूसरी सरकारों ने तैयारियाँ शुरू कर दी थीं। मगर भारत का प्रधानमंत्री तैयारी करने

(पेज 14 पर जारी)

मुनाफ़ाख़ोरी के गर्भ से पैदा हुआ वैक्सीन संकट

हमारे देश और दुनिया में पैदा हुई वैक्सीन की किल्लत का ज़िम्मेदार कौन?

– डॉ. पावेल पराशर

कोविड-19 महामारी के बीच जब दुनिया के विभिन्न हिस्सों में कार्यरत वैज्ञानिकों की मेहनत रंग लायी और वैक्सीन के सफल निर्माण और शुरुआती ट्रायलों में उसकी प्रत्यक्ष प्रभाविता की ख़बरें आयीं तो दुनिया को इस अँधेरे समय में आशा की किरण दिखायी दी। लेकिन **वैक्सीन निर्माण और उसके वितरण के रास्ते में रोड़ा बनकर खड़ी मुनाफ़ाख़ोर फ़ार्मा कम्पनियाँ, मौजूदा पेटेण्ट क़ानून और बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों के पूँजीवादी नियम, विज्ञान द्वारा पैदा की गयी इस आशा की इस किरण को लगातार मद्धम किये जा रहे हैं।**

चिकित्सा क्षेत्र के नामी जर्नल 'द लान्सेट' में प्रकाशित एक हालिया लेख ने यह निष्कर्ष निकाला कि नयी वैक्सीनों की प्रभाविता दुनिया के लोगों के लिए क्षीण हो जायेगी, यदि आबादी का टीकाकरण एक तय समय सीमा के भीतर पूरा न हो सका। कई वैक्सीनों को महीनों पहले, कुछ को तो करीब आधे साल पहले स्वीकृति मिल जाने के बाद भी आज तक टीकाकरण की रफ़्तार बेहद धीमी है और **अगर यही गति जारी रही तो साल के अन्त तक बस चन्द अमीर मुल्क ही 'हर्ड इम्युनिटी' तक पहुँच सकेंगे। इस बीच वायरस में हो रहे नये-नये म्युटेशन जारी रहेंगे जो वर्तमान वैक्सीनों की प्रभाविता को भी क्षीण करेंगे, इसकी प्रबल सम्भावना जतायी जा चुकी है।**

जहाँ तक दोषारोपण की बात है, तो भारत सहित दुनिया भर का पूँजीवादी मीडिया इस कुप्रबन्धन का ठीकरा सरकारों की भारी-भरकम और अव्यवस्थित नौकरशाही पर फोड़ना चाह रहा है। पर यदि हम इसकी जड़ में जाकर पड़ताल करें तो हम पायेंगे कि **इसके लिए ज़िम्मेदार हैं—मुनाफ़े पर टिकी विश्व अर्थव्यवस्था, साम्राज्यवादी बिग फ़ार्मा और इजारेदार कम्पनियों के हित में बने बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के क़ानून, पेटेण्ट के नियम, दशकों की नवउदारवादी नीतियों के पैरोकारों द्वारा बहुप्रचारित दक्षता, प्रभावशीलता और नवोन्मेष के तमाम मिथकों के बिल्कुल उलट, फिसड्डी, निष्प्रभावी और निकम्मा साबित हो चुका निजी क्षेत्र, और माँग व आपूर्ति के प्रबन्धन में पूरी**

(पेज 19 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

- 'जन स्वास्थ्य अधिकार मुहिम' का आह्वान... 5
- ज़ायनवादी हमलावरों के ख़िलाफ़ फ़िलिस्तीनी जनता का बहादुराना संघर्ष... 11
- भारतीय राज्यसत्ता द्वारा बस्तर में क़त्लेआम जारी... 13
- मेवात में साम्प्रदायिक माहौल बिगाड़ने में लगे नफ़रत के सौदागर 15
- संघियों के झूठे और ज़हरीले प्रचार का पर्दाफ़ाश करना होगा 15
- जो सच-सच बोलेंगे, मारे जायेंगे! 16
- लक्षद्वीप को अशान्त और अस्थिर करने में जुटे संघ और भाजपा 17
- मक्सिम गोर्की : साहित्यिक परिचय 21
- गुज़रे दिन : कार्टूनिस्टों की नज़र में 23
- बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ 24

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

पाठकों के लिए ज़रूरी सूचना

हमें ख़ुशी है कि केवल एक अंक के अन्तर के बाद हम इस बार से 'मज़दूर बिगुल' को फिर से छापना शुरू कर चुके हैं। इससे डाक से अख़बार मँगाने वाले देश भर के हज़ार से अधिक पाठकों को फिर से बिगुल मिलने लगेगा। इसके अलावा मज़दूर बस्तियों, कारख़ानों और दफ़्तरों में, कालोनियों आदि में कार्यकर्ताओं के माध्यम से तमाम मेहनतकश साथियों तक अख़बार फिर से पहुँचना शुरू हो जायेगा।

इसके साथ ही पहले की तरह "मज़दूर बिगुल' का डिजिटल संस्करण भी प्रकाशित किया गया है। आजकल देश-दुनिया में हो रही घटनाओं पर चर्चा करने के लिए इतनी सारी ज़रूरी बातें हैं कि इनके लिए बिगुल के 16 पन्ने कम पड़ जाते हैं। बिगुल का पिछला डिजिटल अंक 28 पेज का था।

इस बार के डिजिटल संस्करण में 24 पेज हैं। कुछ बहुत महत्वपूर्ण सामग्री केवल डिजिटल संस्करण में ही है। आगे भी 'मज़दूर बिगुल' के डिजिटल संस्करण में ऐसी और भी सामग्री हम देते रहेंगे जो जगह की कमी के कारण छपे हुए अख़बार में नहीं जा पाती है।

यह डिजिटल संस्करण बिगुल की वेबसाइट, फ़ेसबुक पेज, ईमेल, व्हॉट्सऐप और टेलीग्राम पर आपको पहले की तरह उपलब्ध होता रहेगा।

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का डिजिटल संस्करण अभी नहीं मिलता है, तो हमारे सोशल मीडिया चैनलों से जुड़िए। 'मज़दूर बिगुल' के अंक की पीडीएफ़ कॉपी और इसके अलग-अलग लेखों के साथ-साथ हम हर दिन देश और दुनिया की बेहतरीन कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास अंश, राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक विषयों पर लेख, हर रविवार को पुस्तकों की पीडीएफ़ फाइल आदि व्हॉटसऐप, टेलीग्राम व फ़ेसबुक के माध्यम से हज़ारों पाठकों तक पहुँचाते हैं। अगर आप हमसे जुड़ना चाहें तो इस लिंक पर जाकर हमारे व्हॉट्सऐप चैनल से जुड़ें :

http://www.mazdoorbigul.net/whatsapp

कोई समस्या आए तो इस नंबर पर अपना नाम और जिला लिख कर भेज दें - **9892808704**

हमारे फ़ेसबुक पेज - **https://www.facebook.com/mazdoorbigul/**

https://www.facebook.com/unitingworkingclass/

टेलीग्राम चैनल - **http://www.t.me/mazdoorbigul**

हमारा आपसे आग्रह है कि तीनों माध्यमों व्हाट्सएप्प, फेसबुक और टेलीग्राम से जुड़ें ताकि कोई एक बन्द या ब्लॉक होने की स्थिति में भी हम आपसे जुड़े रह सकें।

ईमेल पर अख़बार पाने के लिए हमें अपनी ईमेल आईडी भेज दें।

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिये लोगों तक पहुँचें?

तो कलम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सऐप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सऐप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :

www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546, 9971196111
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

उत्तर प्रदेश में पंचायत चुनाव : एक रिपोर्ट

– प्रसेन

उत्तर प्रदेश में ग्राम पंचायत, जिला पंचायत और क्षेत्र पंचायतों का चुनाव योगी सरकार द्वारा ऐसे समय में करवाया गया जब कोरोना महामारी की दूसरी लहर अपने उफान पर थी। इस चुनाव की क़ीमत हज़ारों सरकारी कर्मचारियों और लाखों लोगों ने अपनी ज़िन्दगी गँवाकर चुकायी। कोरोना महामारी के दौरान सरकार के आपराधिक रवैये और पूरी ताक़त झोंक देने के बावजूद भाजपा समर्थित उम्मीदवार पंचायत सदस्यों के चुनाव में सपा समर्थित उम्मीदवारों की तुलना में मामूली अन्तर से दूसरे स्थान पर रहे। ज़िला पंचायत के 3052 सदस्यों में सपा समर्थित उम्मीदवारों ने 747, भाजपा समर्थित उम्मीदवारों ने 690 सीटें जीती हैं। बसपा, कांग्रेस, रालोद समर्थित उम्मीदवारों के हिस्से में क्रमशः 381, 76 और 60 सीटें आयीं। आम आदमी पार्टी को भी लगभग दो दर्जन सीटें मिली हैं। निर्दलीय प्रत्याशियों ने सबसे ज़्यादा 1,071 सीटों पर जीत हासिल की है।

इस बार के पंचायत चुनावों में भाजपा बहुत योजना और सुव्यवस्थित प्रचार के साथ मैदान में उतरी थी। इससे यह बात सहज ही समझी जा सकती है कि संघ परिवार ग्रामीण इलाकों में अपने सामाजिक आधार को विस्तृत करने में कितना सक्रिय है। चुनाव नतीजों में सपा मामूली अन्तर के साथ ही भाजपा से आगे थी। ग़ौरतलब है कि यह स्थिति तब है जबकि कोरोना के उफान के समय में दो चरणों के मतदान होने से भाजपा को थोड़ा नुक़सान उठाना पड़ा और टिकट के बँटवारे को लेकर बहुत सारी सीटों पर असन्तुष्ट भाजपाई बागी प्रत्याशी बन गये थे। अगर पिछले चुनाव के नतीजों के आधार पर देखा जाये तो इस बार 747 सीटों पर सपा समर्थित प्रत्याशी जीते हैं जबकि पिछली बार (2015-16) सपा ने 2000 से ज़्यादा सीटों पर अपने समर्थित प्रत्याशियों के जीतने का दावा किया था। ऐसे में केवल चुनाव में थोड़े-बहुत अन्तर के नतीजों के आधार पर फ़ासिस्टों की जनता में पकड़ ढीली होने का आकलन बहुत ग़लतफ़हमी पैदा करता है। दूसरी बात यह कि ज़िला पंचायत स्तर के चुनाव में आम तौर पर स्थानीय ठेकेदार, प्रॉपर्टी डीलर, स्थानीय छुटभैये नेता चुनाव लड़ते हैं और पूरी राजनीति स्थानीय स्तर पर जातिगत-धार्मिक समीकरण, धनबल-बाहुबल जैसे कारकों के आधार पर तय होती है। जातिगत समीकरण का इस्तेमाल करने में भी फ़ासिस्ट अन्य बुर्जुआ चुनावबाज़ पार्टियों से कहीं आगे हैं। ओबीसी और एससी/एसटी में आने वाली बहुत सारी जातियों में फ़ासिस्टों ने अपनी गहरी पैठ बना कर रखी है। यह पूरी स्थिति उत्तर प्रदेश के ग्रामीण इलाक़ों में फ़ासीवादी संघ परिवार की बढ़ती पैठ को दर्शा रही है।

ग्राम प्रधान के चुनाव में ग्रामीण रसूखदारों, सूदख़ोरों, बड़े किसानों, प्रॉपर्टी डीलरों, भट्ठा मालिकों आदि का ख़ूब बोल-बाला रहा क्योंकि यही वह ग्रामीण वर्ग है जिसके पास पर्याप्त पूँजी है, जो चुनाव में निवेश कर सकते हैं। बर्बर शोषण करने वाले और बात-बात पर हैसियत और जातिगत ऐंठ दिखाने वाले ये ग्रामीण शोषक चुनाव से पहले अपने को सबसे बड़ा समाजसेवी और ईमानदार दिखाने की कोशिश में दिन रात एक कर रहे थे। लेकिन चुनाव जीतने के लिए यह ग्रामीण अमीर वर्ग गाँव में पैसा, शराब, साड़ी, मुर्गा आदि बाँटने, चूल्हे-चूल्हे की राजनीति करने, जातिगत समीकरण का इस्तेमाल करने और ज़रूरत के मुताबिक मेहनतकश आबादी पर अपनी हैसियत और ताक़त का इस्तेमाल करने से बाज़ नहीं आया। जहाँ पर आरक्षण की वजह से ये ख़ुद प्रत्याशी के रूप में नहीं थे वहाँ इन्होंने हमेशा की तरह अपने पिट्ठुओं को चुनाव लड़वाकर और लाखों रुपये ख़र्च कर अपना उल्लू सीधा किया। यही स्थिति अलग तरीक़े से महिलाओं की थी। ज़्यादातर महिला सीटों पर चुनाव असल में पुरुष ही लड़ रहे थे।

इस बार के चुनाव में एक नयी बात यह देखने को आयी कि ग्राम प्रधान के चुनाव में बड़ी संख्या में नौजवान क़िस्मत आज़माने उतरे। इसकी एक वजह रोज़गार का संकट भी है जो बहुत से युवाओं को नौकरी के अलावा अन्य विकल्पों के बारे में सोचने को मजबूर कर रहा है। दूसरे चुनाव से ऐन पहले यह ख़बर भी चर्चा में रही कि ग्राम प्रधानों को राजपत्रित (गज़टेड) अधिकारी के बराबर वेतन दिया जायेगा; हालाँकि यह ख़बर महज़ अफ़वाह थी। कई जगहों पर युवाओं ने कुछ अलग और रचनात्मक तरीकों से कोशिश की लेकिन ज़्यादातर जगह हास्यास्पद स्थिति ही थी क्योंकि इनकी सोच लोभ-लाभ के पूँजीवादी दायरे में ही थी। कुल मिलाकर ग्राम प्रधान और ग्राम पंचायत की पूरी संस्था पूँजीवादी व्यवस्था का ग्रामीण स्तम्भ है और इसके ज़रिए फ़ासीवादी ताक़तें ग्रामीण भारत में अपनी जड़ें मज़बूत करने के साथ ही साथ अपने प्रभाव को दृढ़ करने में भी काफ़ी हद तक सफल रही हैं।

ज़िला पंचायत सदस्य के चुनाव में तमाम संसदमार्गी वामपन्थी पार्टियाँ भी अपने उम्मीदवार खड़ी करती हैं लेकिन चुनाव में जनता के मुद्दों, अस्मितावाद और कहीं-कहीं धार्मिक मूल्य-मान्यताओं को भी तुष्ट करने की राजनीति की खिचड़ी बना देने के चलते किसी भी तरह का वास्तविक विकल्प देने में अक्षम हैं।

फ़ासिस्टों ने लम्बे अरसे में नौकरशाही, न्यायपालिका और चुनाव आयोग जैसी संस्थाओं में घुसपैठ की है और इन्हें अपनी ज़रूरतों के अनुकूल ढाल लिया है। प्रदेश के अम्बेडकरनगर जिले में 41 ज़िला पंचायत सदस्यों के नामांकन के समय ही भाजपा और ज़िला प्रशासन की मिलीभगत सामने आने लगी जब अन्य सभी उम्मीदवार लाइन में खड़े होकर अपनी बारी का इन्तज़ार कर रहे थे, उसी समय भाजपा उम्मीदवारों को बिना किसी लाइन में लगाये एक साथ नामांकन कर दिया गया। जहाँ चुनाव में निर्दलीय प्रत्याशियों और कम पैसे वाले लोगों के लिए कोविड की दुहाई देकर प्रचार में केवल एक वाहन ले जाने की अनुमति दी गयी थी वहीं तमाम पार्टियों के रसूखदार उम्मीदवारों पर प्रशासन द्वारा ऐसी कोई रोक नहीं लगायी गयी। इन पार्टियों का चुनाव प्रचार और रैलियाँ धड़ल्ले से चलती रहीं।

पंचायत चुनावों में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की भागीदारी

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (आरडब्ल्यूपीआई) की ओर से अम्बेडकरनगर की आलापुर तहसील के रामनगर द्वितीय ज़िला पंचायत क्षेत्र से ज़िला पंचायत सदस्य के चुनाव में भागीदारी की गयी और साथी मित्रसेन को उम्मीदवार बनाया गया। मज़दूर पार्टी का आलापुर तहसील के जिस क्षेत्र में लम्बा काम और जनाधार था, वहाँ की सीट सुरक्षित हो जाने के कारण भागीदारी सम्भव नहीं हो सकी। ऐसे में रामनगर द्वितीय क्षेत्र मज़दूर पार्टी के लिए नया था। दूसरे, पंचायत चुनाव में भागीदारी करने का फ़ैसला नामांकन से कुछ ही दिनों पहले किया गया। इस देरी की वजह से और बाद में कोरोना महामारी के कारण पार्टी को इस नए इलाक़े में प्रचार करने और अपनी बातों को लोगों तक ठीक से पहुँचाने का समय नहीं मिल सका। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी इस चुनाव में शिक्षा, चिकित्सा, रोज़गार और मज़दूरी जैसे सवालों को लेकर उतरी थी। प्रचार का मौक़ा न मिलने और नया इलाक़ा होने के बावजूद चुनाव में साथी मित्रसेन को 228 वोट प्राप्त हुए। यह चुनाव के नतीजे हमारे लिए सबक़ भी हैं कि अगर मेहनतकश जनता के ज़िन्दगी से जुड़े असली सवालों को लोगों के बीच में लेकर जाया जाये, तो आने वाले समय में विकल्पहीनता की स्थिति में पैसे, शराब, जाति-धर्म के नाम पर वोट देने वाली जनता को एक सही क्रान्तिकारी राजनीति के इर्द-गिर्द लामबन्द किया जा सकता है। फ़ासीवाद को चुनौती भी आम मेहनतकश जनता की उसके वास्तविक मुद्दों पर वर्गीय लामबन्दी के आधार पर ही दी जा सकती है।

दिल्ली के शाहाबाद डेरी में मज़दूर बस्तियों के बगल में बनाये गये श्मशान को हटाने का संघर्ष और सरकारी तंत्र का मकड़जाल!

– प्रियम्वदा

कोरोना महामारी की दूसरी लहर के दौरान सरकार की बदइंतज़ामी ने हजारों लोगों की असमय जान ली। मरने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि लाशों के लिए जगह कम पड़ गयी। कहीं लाशों को नदियों में बहाया गया तो कहीं नये-नये शमशान खोले जा रहे थे। ऐसा ही एक श्मशान अप्रैल महीने में उत्तर-पश्चिमी दिल्ली के शाहाबाद डेरी के रिहायशी इलाक़े में बनाया गया। तब दिल्ली में कोविड से मरने वालों की संख्या 4 से 5 हज़ार तक बतायी जा रही थी (ज़मीनी हकीकत इससे कहीं अधिक बदतर थी)। दिल्ली सरकार की मंज़ूरी के बाद शुरू हुए इस श्मशान में आये दिन तकरीबन 50 से 60 लाशें जलायी जा रही थीं, जिससे वहाँ रहने वाली आबादी का साँस लेना तक दूभर हो गया था।

शाहाबाद डेरी में रहने वाली बहुसंख्यक आबादी मज़दूरों की है, उनकी रिहायश की जगह पर श्मशान बनाना बेहद अमानवीय है। अप्रैल से मई मध्य तक हालत इतनी भयावह थी कि लाशों से उठने वाला धुआँ लोगों के खाने, पीने के पानी तक में मिल रहा था। बारिश और ख़राब मौसम के दौरान अधजली लाशों को कुत्ते नोच-नोच कर लोगों के घरों-गलियों तक छोड़ जा रहे थे। प्रशासन की लापरवाही इस हद तक थी कि पीपीई किट से लेकर मास्क आदि खुले में फेंके जा रहे थे जो आगे चलकर आसपास संक्रमण फैलने का कारण भी बने।

इस दौरान जनप्रतिनिधियों से कई बार शिकायत करने पर भी किसी ने कोई ठोस कदम नहीं उठाया। इलाके के पार्षद और विधायक दोनों ही आम आदमी पार्टी के हैं, मगर इस गम्भीर मसले पर तुरन्त कार्रवाई करने की जगह ये लोगों की ज़िन्दगियों से खिलवाड़ करते रहे। मुख्यमंत्री आवास तक अपनी बात ले जाने, ज्ञापन सौंपने के बावजूद केजरीवाल सरकार की प्राथमिकताओं में केंद्र के साथ तू नंगा-तू नंगा का खेल ही चलता रहा।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के नेतृत्व में लगातार जनदबाव बनाये जाने के बाद इलाके के पार्षद श्मशान के आसपास के क्षेत्र का मुआयना करने पहुँचे और ज़िम्मेदार अफसरों से बातचीत करके रास्ता निकालने की बात कहने को मजबूर हुए। लेकिन वहाँ से निकलने के बाद पार्षद महोदय छूमन्तर हो गये और फिर लोगों की कोई सुध नहीं ली। बवाना विधानसभा क्षेत्र में आने वाले इस इलाके के विधायक ने डीडीए और एमसीडी को इसका ज़िम्मेदार ठहराते हुए इस पूरे मामले से ही अपना पल्ला झाड़ लिया।

मज़दूर पार्टी द्वारा जब इस मामले के ज़िम्मेदार अफ़सरों को घेरा गया तो नौकरशाही का भयंकर मकड़जाल सामने आया। उत्तर पश्चिमी दिल्ली के ज़िलाधिकारी से बात करने पर पता चला कि डीडीए की ज़मीन पर श्मशान के निर्माण का काम किया गया है, इसलिए इस मसले में डीडीए ही कुछ कर सकती है। डीडीए के अफ़सरों से मिलने पर ये बताया गया कि डीडीए ने चूँकि अपनी ज़मीन एमसीडी को सौंप दी है, इसलिए अब वह इसमें कुछ नहीं कर सकते। आगे एमसीडी के हेल्थ ऑफ़सिर ने केजरीवाल सरकार और डीडीए के उच्च अधिकारियों पर इसका ठीकरा फोड़ते हुए अपना पल्ला झाड़ लिया।

मालूम हो कि केन्द्र सरकार के मातहत आने वाली एमसीडी की फंडिंग और दिल्ली सरकार की मंज़ूरी से श्मशान के काम को आगे बढ़ाया जा रहा है।

इस दौरान डीडीए से लेकर एमसीडी और केजरीवाल सरकार की मिलीभगत ने मामले को बस एक टेबुल से दूसरे टेबुल भेजने का काम किया और यह दिखा दिया को उन्हें वहाँ रह रहे मज़दूरों की समस्याओं से कोई लेना-देना नहीं है। डीडीए ने बताया कि मज़दूरों की झुग्गियाँ अनधिकृत होने की वजह से उनके दस्तावेज़ों में वहाँ रह रहे लोगों की कोई गिनती नहीं है, इसलिए उनकी समस्या भी अधिकारियों के लिए मौजूद ही नहीं है।

यह बात एक बार फिर साफ़ हो गयी कि मज़दूरों-मेहनतकशों की ज़िन्दगी सरकार और प्रशासन के लिए महज़ एक गिनती, एक संख्या मात्र है। इस देश में 18 करोड़ लोग जो झुग्गियों में रहते हैं, 18 करोड़ लोग जो फुटपाथों पर सोते हैं वे इस व्यवस्था में दोयम दर्जे के नागरिक हैं। अपने ख़ून-पसीने से इस देश की सम्पत्ति खड़ा करने वाली मज़दूर आबादी का अस्तित्व बस इतना ही है कि वह अपनी ज़िन्दगी दाँव पर लगाकर चन्द मुट्ठीभर लोगों के लिए दौलत पैदा करती रहे।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी द्वारा लगातार एमसीडी के अधिकारियों, उत्तरी दिल्ली के कमिश्नर पर दबाव बनाने के बाद श्मशान में आ रही लाशों की संख्या काफ़ी कम हुई और पीपीई किट से लेकर अन्य सामग्रियों को डिस्पोज़ करने का स्थान भी सुनिश्चित किया गया। लेकिन ये महज़ एक आंशिक जीत है, संघर्ष अभी भी जारी है। सरकार और प्रशासन की इन आपराधिक लापरवाहियों और मज़दूर-विरोधी रवैये के खिलाफ़ आज ज़रूरत है कि इलाके में लोगों द्वारा चुनी हुई जन कमिटियों का निर्माण किया जाये जो संघर्ष के रास्ते तय करने के साथ-साथ अपने गली-मोहल्ले की ज़रूरतों, दिक्कतों पर फैसला लें।

मुम्बई : मेहनतकशों की ठण्डी हत्याओं की राजधानी

देश की आर्थिक राजधानी कहे जाना वाला मुम्बई शहर सही मायने में पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा मुनाफ़े की हवस को बुझाने के लिए की जाने वाली आम मेहनतकशों की ठण्डी हत्याओं की भी राजधानी है। इन हत्याओं को अक्सर प्राकृतिक दुर्घटनाओं, हादसों आदि का नाम दे दिया जाता है और बहुत सफ़ाई से लूट और मुनाफ़े के लिए की जाने वाली इन हत्याओं पर प्रशासनिक लीपापोती कर दी जाती है।

अभी मानसून शुरू भी नहीं हुआ कि बारिश की वज़ह से इमारतों के गिरने और लोगों के मौत के मुँह में समाने की ख़बरें आनी शुरू हो गयी हैं। 9 जून की रात को मुम्बई की घनी मज़दूर आबादी वाले मालाड वेस्ट कलेक्टर कम्पाउण्ड में एक चार मंज़िला इमारत गिरने से 8 बच्चों सहित 11 लोगों की मौत हो गयी और 18 लोग बुरी तरह से जख़्मी हो गये।

मुम्बई में ये हादसा कोई नयी बात नहीं है। इससे पहले भी मुम्बई में बारिश के चलते इमारतें गिरती रही हैं। हर बार इन घटनाओं से होने वाली मौतों की फ़ाइल एक टेबल से दूसरे टेबल तक घूमती रहती है और कार्रवाई सिर्फ़ काग़ज़ों पर होती है। इस बीच दूसरी घटना का इन्तज़ार होता रहता है और इस कार्रवाई की क़ीमत अगली बार हज़ारों टन मलबे के नीचे दबकर दम तोड़ते लोग चुकाते हैं। इस घटना के बाद अब फिर से वही पुरानी कहानी दुहरायी जा रही है, जाँच का आदेश देकर, एक पार्टी के नेता दूसरे पार्टी पर, एक मंत्रालय दूसरे मंत्रालय पर, एक अफ़सर दूसरे अफ़सर पर दोषारोपण करके और मृतक परिवारों और घायलों के लिए मुआवज़े की घोषणा करके अपना पिण्ड छुड़ा रहे हैं। यह बस घोषणा ही बन कर रह जाती है क्योंकि पूँजीवादी मशीनरी में इतने छेद है कि या तो मुआवज़ा मिलता ही नहीं है या फिर जिनको मिलता भी है उसका बड़ा हिस्सा मंत्रियो, अफ़सरो और बाबुओं की जेब में चला जाता है।

केन्द्र और राज्य की सरकारें अपनी ज़िम्मेदारी से छुटकारा पाने कि कोशिश में लगी हुई हैं। पूरे कोरोना के संकटकाल में गायब रहे प्रधानमंत्री इस घटना पर अचानक से बरसाती मेढक कि तरह कूद-कूद कर ट्वीट पर ट्वीट किये जा रहे है, भाजपा शिवसेना को दोषी ठहरा रही है, शिवसेना सफ़ाई दे रही है, बीएमसी जाँच की बात कर रही है। लेकिन इन सब लीपापोती के पीछे सबसे ज़रूरी बातें एक बार फिर भुला दी जा रही है कि आख़िर ऐसे हालात बने ही क्यों? आये दिन होने वाली ऐसे घटनाओं के पीछे के असली कारण क्या है? इन घटनों के लिए असली ज़िम्मेदार कौन है?

भारत में हर दिन औसतन 10 इमारतें गिर जाती हैं। इन घटनाओं में औसतन 7 लोग रोजाना मौत के मुँह में समा जाते हैं। हर साल केवल इमारतों के गिरने से 2700 लोग जान गँवा देते हैं। अकेले मुम्बई में साल 2012 से 2018 के बीच 2704 इमारतें गिर चुकी है जिसमें हज़ारों लोग मारे जा चुके हैं। रिपेयर एण्ड रिकंस्ट्रक्शन रिपोर्ट के मुताबिक हर साल मुम्बई में 20-25 बड़ी इमारतें गिरती हैं। मुम्बई में महाराष्ट्र हाउसिंग एण्ड एरिया डेवलपमेण्ट अथॉरिटी के अधीन 100 साल पुरानी इमारतों की संख्या क़रीब 16,000 है, जिसमें कुछ तो इससे भी पुरानी हैं। महाराष्ट्र हाउसिंग एण्ड एरिया डेवेलपमेंट अथॉरिटी काग़ज़ी तौर पर हर साल बारिश का मौसम शुरू होने से पहले इन इमारतों का सर्वे करवाती है और ख़तरनाक हो चुकी इमारतों को ख़ाली करवाती है। लेकिन सिर्फ़ काग़ज़ी तौर पर, हक़ीक़त इससे कोसों दूर है। सच्चाई यह है कि इमारतों की माली स्थिति के अनुसार उन्हे तीन श्रेणियों सी1, सी2, सी3 में बाँटा जाता है। सी1 श्रेणी की इमारतों को तत्काल ख़ाली कर नष्ट कर देने का प्रावधान है। आँकड़ों के हिसाब से मुम्बई में 2019 में 633 बेहद जर्जर सी1 इमारतें थीं जिनमे से अब तक केवल 62 को ख़ाली कराया गया है और इन 62 ख़ाली करायी गयी इमारतों में से 43 को ही ध्वस्त किया गया है। इन मकानों में रहने वाली आबादी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और देश के अन्य प्रदेशों से आने वाले प्रवासी मज़दूरों की है। मकान मालिक जानते हैं कि मजबूरी में ये मज़दूर इन मकानों में रहेंगे ही इसलिए बिना सुरक्षा का कोई इन्तज़ाम किये, एक-एक कमरे मे 8-10 मज़दूरों को ठूँस दिया जाता है। ऊपर से प्रवासी मज़दूर होने के नाते इनको स्थानीय निकायों में वोट देने का अधिकार भी नहीं है। इसलिए स्थानीय नेता और स्थानीय निकायों को इन मज़दूरों की नारकीय स्थिति का कोई खयाल नहीं रहता है और इन्हें अपने हालात पर जीने-मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। अक्सर ऐसी घटनाओं के बाद तू-तू , मैं-मैं का खेल शुरू हो जाता है और इस खेल में लोगों की जानें जाती रहती हैं।

हर बार इन घटनाओं की पड़ताल करते समय सरकार, प्रशासन, ठेकेदार आदि की मिलीभगत से रचे जा रहे मौतों के इस ताण्डव को प्राकृतिक कारणों जैसे बारिश, भूकम्प, तूफान इत्यादि के नाम पर छिपा देने की भरसक कोशिश की जाती है। लेकिन ख़राब मौसम अकेले कभी किसी इमारत के गिरने का कारण नहीं होता है। बल्कि ज़्यादातर मामलों में ये घटनाएँ घटिया निर्माण सामग्री के इस्तेमाल, सुरक्षा मानकों को ताक पर रखकर किये जाने वाले निर्माण कार्यों, ख़राब-रखरखाव, समय-समय पर होने वाले जाँचों को नज़रअन्दाज़ कर देने से होती है। सच्चाई यह है कि जब तक निजी मालिकाने पर आधारित मौजूदा पूँजीवादी लूट की व्यवस्था बनी रहेगी, तब तक आम मेहनतकश लोगों की ज़िन्दगी के साथ ऐसा खिलवाड़ होता रहेगा, उनकी ज़िन्दगी को इस पूँजीवादी व्यवस्था की बलि चढ़ाते रहा जायेगा। इसलिए इन घटनाओं के बाद मुआवज़े, उचित जाँच और सुरक्षा और निर्माण के मानकों को लागू करवाने के साथ ही इस मुनाफ़ा आधारित पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का संघर्ष भी करना होगा।

– अविनाश

कोरोना की आपदा : मालिकों के लिए मज़दूरों की लूट का अवसर

कोरोना काल को एक बार फिर अवसर में तब्दील करते हुए फासीवादी मोदी सरकार मज़दूरों की श्रम-शक्ति की लूट को तेज़ी से लागू कर रही है। कोरोना महामारी में सरकार की बदइन्तज़ामी की वजह से जब एक तरफ़ आम मेहनतकश आबादी दवा-इलाज़ की कमी और राशन की समस्या की दोहरी मार झेल रही है तब ऐसे वक्त में गोवा की सरकार ने मज़दूरों के काम के घण्टे बढ़ाकर उन पर एक और हमला किया है। कोविड-19 का हवाला देते हुए गोवा में भाजपा की सरकार ने मज़दूरों के काम के घंटे 8 से बढ़ाकर 12 कर दिये हैं ताकि मालिकों के मुनाफ़े को बरकरार रखा जा सके।

पिछले साल अप्रैल में महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात, राजस्थान व अन्य राज्यों में भी कोरोना माहामारी का हवाला देकर काम के घंटे बढ़ाकर 12 कर दिये गये थे। और तीन महीने तक मज़दूरों को फैक्टरियों में 12-12 घण्टे फैक्टरियों में खटना पड़ा था। उत्तर प्रदेश की योगी सरकार तो तीन साल तक सभी श्रम क़ानूनों को स्थगित करने का क़ानून ही ले आयी थी जिसे हाई कोर्ट के दखल के बाद रोकना पड़ा।

मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद मज़दूर-विरोधी नीतियाँ पूरे देशभर में नंगे रूप से लागू की गयी हैं। जो भी बचे-खुचे श्रम कानून थे उन्हें ख़त्म कर चार लेबर कोड ले आये गये हैं जिनका सिर्फ़ एक ही मकसद है—मज़दूरों के पसीने की एक-एक बूँद को सिक्के में ढालकर मालिकों की तिजोरी में भरना। ये क़ानून न सिर्फ़ मज़दूरों की लूट बल्कि उनके संगठित होने के अधिकार पर भी एक बड़ा हमला है। मज़दूरों ने अपना खून बहा कर जो भी अधिकार हासिल किये थे उन्हें तमाम सरकारें पिछले पच्चीस वर्षों के दौरान एक-एक करके ख़त्म करती रही हैं। लेकिन मोदी सरकार ने आते ही इसकी रफ़्तार तेज़ कर दी है। इसकी बेशर्मी और मज़दूरों से नफ़रत की इन्तहा यह है कि कोरोना के दौर में, जब मज़दूर की रोज़ी-रोटी छीनी जा रही है, तब भी वह ऐसे क़ानून लाकर अपनी मालिकपरस्ती साबित कर रही है। पूँजीवादी राज्यसत्ता किस प्रकार अपने मालिक वर्ग के प्रति वफ़ादार होती है और मज़दूर-विरोधी होती है, इस बात को इन नीतियों से साफ़ देखा जा सकता है।

पहले से ही आर्थिक मन्दी के दौर से गुज़र रही पूँजीवादी व्यवस्था का संकट कोरोना काल में और गहरा गया है और इसकी भरपाई यह सरकार मज़दूरों की श्रम-शक्ति को निचोड़कर, उनके हक़ों को छीनकर करना चाहती है।

आज मज़दूर वर्ग को अपने हक़ों के लिए एकजुट होना ही होगा, नहीं तो ये पूँजीपति मुनाफ़े की हवस में हमारे ख़ून का आख़िरी कतरा तक निचोड़ लेंगे। साथ ही, हमें फ़ासीवादी ताकतों से लड़ने की तैयारी भी करनी होगी। इतिहास गवाह है कि मज़दूर वर्ग की फ़ौलादी एकता ने ही फासिस्टों को चकनाचूर किया है और आने वाला वक्त भी फासिस्टों के ख़ात्मे का ही होगा। लेकिन इसके लिए ज़रूरी है कि सारे मेहनतकश धर्म और जाति के सवालों पर बँटना और आपस में लड़ना छोड़कर अपने हक़ों के लिए एकजुट होने की तैयारी करें।

– बिगुल संवाददाता

पुणे में 18 मज़दूरों की मौत : मज़दूर नहीं जागे तो मौतों का यह सिलसिला चलता ही रहेगा

एक बार फिर यह साबित हो गया कि पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूरों की जान की क़ीमत कीड़े-मकोड़ों से ज़्यादा नहीं है। बीते 7 जून को पुणे के औद्योगिक क्षेत्र में केमिकल के एक कारखाने में भीषण आग लग गयी, जिसमें 18 मज़दूरों की जान चली गयी जिनमें ज़्यादातर महिलाएँ थीं। उस समय फैक्ट्री में 37 मज़दूर मौजूद थे। इनमें कार्यरत मज़दूर महज़ 7000-8000 रुपये वेतन पर फैक्टरी मालिक के कारखाने में खटते थे। इस हत्याकांड का ज़िम्मेदार कौन है? सबसे पहले ये फैक्टरी मालिक जो हमारे हाड-मांस को काट-काटकर मुनाफ़ा कमाना चाहते हैं। पुणे से लेकर दिल्ली और पूरे देश के कारखाने कसाईखाने हैं, जहाँ मज़दूर अपनी मेहनत मालिक को 200 रुपये की दिहाड़ी पर बेचने को मजबूर हैं। इन्हीं जोंकों के पैसे से तमाम पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ चुनाव लड़ती हैं। इन्हीं के नेता-मंत्री केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और नगर निगम में बैठते हैं। वे ही इस हत्या, लूट और शोषण को क़ानूनी जामा पहनाते हैं। पुणे में जो हुआ वह हादसा नहीं, इन्हीं कफ़नखसोटों और मुर्दाखोरों द्वारा अंजाम दिया गया हत्याकाण्ड है।

इसी तरह 2018 के जनवरी में दिल्ली में बवाना के सेक्टर-5 में आग लगी थी। नरेला से लेकर झिलमिल, पीरागढ़ी जैसे औद्योगिक क्षेत्रों में और देश भर के कारखानों में आग लगती रहती है। परन्तु ऐसे हादसों को दोबारा होने से रोकने के लिए अवैध कारखानों पर कोई कार्रवाई नहीं की जाती है। कहने के लिए श्रम विभाग, लेबर इंस्पेक्टर, फैक्टरी इंस्पेक्टर होते हैं, लेकिन इन कारख़ानों की जाँच करने की बजाय वे मालिकों फेंके टुकड़े उठाकर चलते बनते हैं, कारखानों के भीतर तक नहीं जाते। ऊपर से केन्द्र सरकार मज़दूरों के श्रम कानूनों को ख़त्म करने की योजना बना रही है। इन मौतों के लिए यह समूची मुनाफ़ाखोर व्यवस्था ज़िम्मेदार है, जो कारखानेदारों के मुनाफ़े को बचाने में हीं लगी रहती है।

इस कोरोना संकट के समय सरकार को मज़दूरों को आर्थिक व स्वास्थ्य सुरक्षा देनी चाहिए, सवैतनिक अवकाश देना चाहिये, तब मज़दूरों को बिना किसी सुरक्षा के काम पर लगाया जा रहा है। ऊपर से मालिकों ने लॉकडाउन का वेतन तक नहीं दिया। कारख़ानों में सुरक्षा के कोई इन्तज़ाम नही हैं।

अगर भूख, बीमारी और कारख़ानों में हो रही मौतों के बाद भी मज़दूर चुप रहते हैं, तो मालिक उनके साथ ऐसे ही ग़ुलामों जैसा बरताव करते रहेंगे। उन्हें एकजुट होकर सरकार को मजबूर करना होगा कि पुणे जैसी घटनाओं के लिए दोषी मालिकों को सख्त से सख्त सज़ा मिले। साथ ही फ़ैक्ट्री में मज़दूरों की सलामती के सभी ज़रूरी इन्तज़ाम किये जायें। राज्य और केन्द्र सरकार देश के सभी औद्योगिक क्षेत्रों में हर फ़ैक्ट्री की सुरक्षा जाँच करवाये और हर फ़ैक्ट्री में सुरक्षा का पुख़्ता इन्तज़ाम करवाये।

– बिगुल संवाददाता

देश के अनेक राज्यों में जारी 'जन स्वास्थ्य अधिकार मुहिम' का आह्वान

स्वास्थ्य के अधिकार के बिना जीने का अधिकार बेमानी है! जागो, एकजुट हो, आवाज़ उठाओ!

कहते हैं कि जब रोम जल रहा था तब वहाँ का राजा नीरो बाँसुरी बजा रहा था। भविष्य में हमारे देश के बारे में कहा जायेगा कि जब भारत कोरोना महामारी की आग में जल रहा था तो मोदी सरकार ऊपर से और तेल छिड़कने का काम कर रही थी। कोरोना महामारी की दूसरी लहर ने लाखों लोगों को निगल गया। बीमारी से ज़्यादा लोग बेरहम सरकार की बदइन्तज़ामी और लापरवाही से मारे गये। अप्रैल और मई में सरकारी आँकड़ों के मुताबिक रोज़ाना 4000 से ज़्यादा लोग इस बीमारी से जान गँवा रहे थे, लेकिन असल में इससे कई गुना ज़्यादा मौतें हुई हैं। शहरों की ग़रीब बस्तियों में और गाँव-गाँव में होने वाली मौतों की तो गिनती ही नहीं हुई है।

कई अख़बारों ने मौतों की संख्या कम दिखाने के सरकारी हथकण्डों का पर्दाफ़ाश करके दिखाया है कि मरने वालों की असली संख्या 5 से 10 गुना ज़्यादा होगी। एक प्रसिद्ध अमेरिकी अख़बार ने अपनी जाँच-पड़ताल के आधार पर लिखा कि मई के अन्त तक करीब 42 लाख लोगों की मौत हुई। असल में कितने लोग इस हत्यारी सरकार के आपराधिक निकम्मेपन की भेंट चढ़ गये, इसका पता शायद ही कभी चल पायेगा।

यदि इन लोगों को समय पर अस्पताल, बेड, ऑक्सीजन और सही इलाज मिल गया होता तो इनमें से बहुत सारे आज भी हमारे बीच होते। ये इस मुनाफ़ाखोर-आदमखोर पूँजीवादी व्यवस्था और बेशर्म फ़ासिस्ट मोदी सरकार के हाथों होने वाली हत्याएँ हैं।

फ़ासिस्ट मोदी सरकार ने जनता को मौत के मुँह में धकेल दिया और ख़ुद बैठकर मौत का तमाशा देखती रही। लोगों के इलाज के लिए पैसे नहीं हैं पर सरकार 20 हज़ार करोड़ से नई संसद और मोदी का नया महल बना रही है। पूरे देश की स्वास्थ्य व्यवस्था बुरी तरह से चरमरा गयी है। ऑक्सीजन से लेकर दवाओं तक की खुली कालाबाज़ारी सरकार की नाक के नीचे धड़ल्ले से चलती रही। ज़्यादातर डॉक्टर और स्वास्थ्यकर्मी बेबस और लाचार हैं, लोग बेबसी में अपनों को मरता देखते रहे और सरकारों में बैठे लोग आज भी बेशर्मी से झूठ पर झूठ बोले जा रहे हैं।

महामारी की पहली लहर में भी मोदी सरकार ने इलाज का मुकम्मल इन्तज़ाम करने के बजाय ताली-थाली बजवाई और बिना किसी तैयारी के देश पर लॉकडाउन थोप दिया। करोड़ों मेहनतकशों को मरने के लिए लावारिस छोड़ दिया गया। उसके बाद भी पिछली गलतियों को सुधारने की कोई कोशिश नहीं की और वैज्ञानिकों की चेतावनी के बावजूद महामारी से निपटने की कोई तैयारी नहीं की। उल्टे विधानसभा और पंचायत चुनाव और कुम्भ के ज़रिए बीमारी को पूरे देश में भयंकर तरह से फैल जाने दिया। इसकी कीमत देश की जनता अपनी जान देकर चुका रही है। पूरे एक साल में न तो कोई नया अस्पताल और ऑक्सीजन प्लांट बना, न दवाएँ बनाने का इन्तज़ाम हुआ और न ही डॉक्टरों-नर्सों आदि की भरती की गयी। अरबों-खरबों रुपये के पीएम केयर फण्ड और कोरोना के नाम पर लिये गये अरबों रुपये के कर्ज़ का किसी को कुछ अता-पता नहीं है। जब बड़े पैमाने पर टीके लगाने का समय था तब मोदी सरकार वैक्सीन को दूसरे देशों को बेच रही थी।

अब अगर कोरोना की तीसरी लहर आ गयी, या और कोई महामारी फैल गयी, तो भी लोग फिर से पहले की मौत के मुँह में झोंके जायेंगे क्योंकि अब भी मोदी सरकार ने कोई तैयारी नहीं की है और भाजपा व संघ परिवार अभी से सिर्फ़ चुनाव की तैयारी में लग गये हैं।

आज़ाद भारत ने ऐसी आपदा पहले कभी नहीं देखी थी। मगर मोदी सरकार जैसी लापरवाह, निर्मम, बर्बर और जनद्रोही सरकार भी हम पहली बार ही देख रहे हैं।

दूसरी लहर के इस क़दर विकराल होने का प्रमुख कारण ही सरकार का अमानवीय और जनद्रोही रवैया है। सरकार कोरोना महामारी को अपने हाल पर छोड़कर तमाम दमनकारी-जनविरोधी कानून जनता पर थोपने में जुट गयी थी। अरबों-खरबों रुपये के पीएम केयर फण्ड और कोरोना के नाम पर लिये गये अरबों रुपये के क़र्ज़ का किसी को कुछ अता-पता नहीं है। न तो व्यापक तौर पर कोविड केयर सेण्टर खड़े किये गये और न ही जीवनरक्षक दवाओं और ज़रूरी सामान की कोई खेप बुरे वक्त के लिए रखी गयी। पिछले डेढ़ वर्षों में मोदी सरकार की अक्षम्य लापरवाही के चलते कोरोना की दूसरी लहर जनता के जान-माल को लीलने में लगी है। तमाम राज्य सरकारों ने भी इस दौरान कोरोना संक्रमण की रोकथाम के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाये।

अपनी नाकामी को छिपाने के मकसद से केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा फिर से बिना किसी योजना के आंशिक या पूर्ण लॉकडाउन थोप दिया गया। लॉकडाउन वाले राज्यों में कोरोना के साथ-साथ लोगों के घरों में भुखमरी ने भी दस्तक दे दी है। बेशक कोरोना एक वास्तविक महामारी है और इसकी संक्रमण दर बहुत ज़्यादा है, मगर बिना किसी तैयारी के किये जाने वाले लॉकडाउन की वजह से महामारी पर तो असरदार ढंग से काबू पाया नहीं जा सकता, उल्टे करोड़ों मेहनतकशों को ग़रीबी और भुखमरी में धकेल दिया जाता है। बहुत आवश्यक होने पर, डॉक्टरों और विशेषज्ञों के बहुलांश की सिफ़ारिश पर पूरी तैयारी के बाद ही लॉकडाउन कुछ समय के लिए लगाया जा सकता है, लेकिन ऐसा तब ही होना चाहिए जब सरकार प्रत्येक नागरिक तक सार्वभौमिक राशनिंग प्रणाली से खाद्य सामग्री पहुँचाना सुनिश्चित करे और प्रत्येक नागरिक को सीधे ट्रान्सफर या भुगतान के माध्यम से न्यूनतम आमदनी मुहैया कराये। इसलिए हम बिना किसी तैयारी के थोपे जा रहे अनियोजित लॉकडाउन का विरोध करते हैं और जनता से अपील करते हैं कि केन्द्र और राज्य सरकारों पर खाद्य सामग्री के वितरण और न्यूनतम आमदनी के लिए दबाव डाला जाये।

वास्तव में, कोरोना संक्रमण का महामारी में तब्दील होना मुनाफ़े पर खड़ी पूँजीवादी व्यवस्था की ही देन है जिसमें जनता के जीवन का कोई मूल्य नहीं है। उस पर हमारे देश में शासन कर रही मानवद्रोही फासिस्ट मोदी सरकार ने इस महामारी को कई गुना और बढ़ा दिया है। दुनिया के बहुत सारे देश इस समय मास्क फ्री तक हो रहे हैं। कई देश अपने ज़्यादातर नागरिकों को कोरोना वैक्सीन का टीका नि:शुल्क दे चुके हैं। स्पेन जैसे पूँजीवादी देश तक ने तमाम प्राइवेट अस्पतालों का राष्ट्रीकरण कर उन्हें सरकारी नियन्त्रण के मातहत ला दिया था। लेकिन हमारे यहाँ मोदी सरकार वैज्ञानिकों, स्वास्थ्यकर्मियों और काबिल लोगों की बातों को हवा में उड़ाकर भयंकर आपदा को न्योता दे रही थी। पिछले एक साल के दौरान भारत ने दुनिया को ऑक्सीजन और दवाओं से लेकर वैक्सीन तक का रिकॉर्ड मात्रा में निर्यात किया और अब देश के लोग इन्हीं चीज़ों की कमी से अपनों को मरता हुआ देखने को मजबूर हैं। सरकारी नाकारापन-निकम्मापन इस हद तक बढ़ गया है कि आज देश के करोड़ों लोग इसका खामियाजा भुगत रहे हैं।

जब कोरोना की दूसरी लहर के ख़िलाफ़ तैयारी का समय था तब हुक्मरान बड़ी-बड़ी रैलियाँ करके, कुम्भ जैसे बड़े धार्मिक आयोजनों को अनुमति देकर आपदा को हज़ार गुना बढ़ाने का षड्यन्त्र रच रहे थे। जब व्यापक वैक्सीनेशन का समय था तब मोदी जी कोरोना को हरा देने के लिए अपनी पीठ थपथपा रहे थे! आज जो लोग मर रहे हैं वे सिर्फ़ कोरोना महामारी के चलते नहीं बल्कि वे फ़ासिस्ट मोदी सरकार की अक्षम्य लापरवाही के चलते भी मर रहे हैं। तमाम अन्य पार्टियों की राज्य सरकारें भी मौत के इस ताण्डव की भागीदार हैं।

इतनी बड़ी आपदा के समय भी सरकार की तैयारी शून्य देखी गयी। पिछले एक साल के अन्दर ही स्वास्थ्य ढाँचे में व्यापक सुधार किया जा सकता था। क्या स्पेन की तरह हम भी स्वास्थ्य के ढाँचे का राष्ट्रीकरण करके युद्ध स्तर पर कोरोना का मुकाबला नहीं कर सकते थे? क्या दूसरी लहर से ऐन पहले चुनावी रैलियाँ किया जाना देश की जनता के ख़िलाफ़ किये जाने वाले किसी भी अपराध से कम है? असल में मोदी सरकार के एजेण्डे में जनता का जान-माल हो तभी तो वह महामारी से गम्भीरतापूर्वक निबटने की कोई योजना बनाती। इनको आपदा प्रबन्धन कि बजाय जनता को जाति-धर्म के नाम पर लड़ाकर पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने का प्रबन्धन ही आता है और वही ये कर भी रहे हैं! इसका हालिया उदहारण तमाम प्राइवेट कम्पनियों को वैक्सीन बेचकर मुनाफ़ा पीटने की छूट देना भी है।

इस मुनाफ़ाखोर व्यवस्था और मोदी सरकार की आपराधिक लापरवाहियों को लोग अगर चुपचाप बर्दाश्त करते रहे तो कल को बहुत देर हो जायेगी। आज पुरज़ोर तरीक़े से यह माँग उठानी होगी कि देश की समूची स्वास्थ्य व्यवस्था का राष्ट्रीकरण करके उसे सरकारी नियन्त्रण में लाया जाये। जब तक स्वास्थ्य सेवाएँ निजी हाथों में रहेंगी तब तक हम इसी तरह अपने परिजनों को अपनी आँखों के सामने दम तोड़ते हुए देखते रहेंगे। कोरोना महामारी के इस भीषण दौर में जनता की जीवन रक्षा के लिए सरकार को इसी वक़्त सभी निजी अस्पतालों, नर्सिंग होमों व पैथोलॉजी लैबों का राष्ट्रीकरण कर अपने नियन्त्रण में लेना चाहिए। हर प्रकार के ज्ञान का उद्भव पूरे समाज के मेहनतकशों के श्रम के बूते ही सम्भव होता है इसलिए ज्ञान पर किसी भी तरह का पेटेण्ट नहीं होना चाहिए। कोरोना वैक्सीन को भी हर तरह के पेटेण्ट से मुक्त करके इसके उत्पादन को भरसक बढ़ाया जाना चाहिए।

'जन स्वास्थ्य अधिकार मुहिम' के तहत बिलकुल न्यायसंगत माँगें उठायी जा रही हैं। जीवन जीने के हक़ के लिए, जिसमें स्वास्थ्य का अधिकार सर्वोपरि है, इंच दर इंच संघर्ष करके ही हम अपनी और अपनों की जानें बचा सकते हैं। मौजूदा आपदा ने हमें यह भी दिखा दिया है कि मुनाफ़े पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था महामारी, मौत, भुखमरी, बेरोज़गारी और असुरक्षा के सिवाय हमें कुछ और नहीं दे सकती है। पूँजीवादी व्यवस्था में स्वास्थ्य व्यवस्था लोगों की जान बचाने के लिए नहीं बल्कि अधिक से अधिक मुनाफ़ा पीटने के लिए ही काम करती है। इस संकट ने एक मानवकेन्द्रित व्यवस्था के निर्माण की ज़रूरत को हमारे सामने फिर से रेखांकित कर दिया है।

'जन स्वास्थ्य अधिकार मुहिम' की मुख्य माँगें :

1. पूरे देश में समूची स्वास्थ्य व्यवस्था का तत्काल राष्ट्रीकरण करो! सभी को एक समान सार्वभौमिक और निशुल्क स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करो और स्वास्थ्य के अधिकार को मूलभूत अधिकार घोषित करो!

2. सभी निजी अस्पतालों, नर्सिंग होमों, पैथोलॉजी लैबों, दवा कम्पनियों, कोरोना वैक्सीन फैक्टरियों और चिकित्सा-सामग्री निर्माण उद्योगों का राष्ट्रीकरण करो! कोरोना वैक्सीन को पेटेण्ट से मुक्त करो!

3. आबादी के अनुपात में व्यापक पैमाने पर डॉक्टरों व स्वास्थ्यकर्मियों की तत्काल पक्की भर्ती करो!

4. मज़दूरों की तत्काल भर्ती कर नए ऑक्सीजन प्लांट चालू करो!

5. सभी नागरिकों को मास्क, दस्तानों व सैनेटाइज़र का निशुल्क वितरण किया जाये! तुरन्त प्रभाव से सभी ज़रूरतमन्दों तक ऑक्सीजन और जीवनरक्षक दवाएँ निशुल्क पहुँचायी जायें!

6. ऑक्सीजन और दवाओं की कालाबाज़ारी करने वालों पर फ़ास्ट ट्रैक कोर्टों के माध्यम से कठोर से कठोर कार्यवाई की जाये!

7. सभी स्टेडियमों, बैंक्वेट हॉलों, होटलों और खाली सरकारी इमारतों को सरकारी कोविड सेण्टरों में तब्दील करो!

8. देश के प्रत्येक नागरिक तक सार्वभौमिक राशन वितरण प्रणाली से भोजन की आपूर्ति की जाये!

9. मज़दूरों-कर्मचारियों की कोरोना संक्रमण से सुरक्षा की व्यवस्था की जाये तथा संक्रमितों को सवैतनिक अवकाश दिया जाये!

10. बिना किसी तैयारी के थोपे जा रहे अनियोजित लॉकडाउन को तत्काल रोका जाये। लॉकडाउन की काबिल डॉक्टरों-वैज्ञानिकों के बहुलांश द्वारा संस्तुति करने पर भी इसे तभी लागू किया जाये जब सरकार प्रत्येक नागरिक तक खाद्य सामग्री पहुँचाया जाना सुनिश्चित करे और प्रत्येक नागरिक को सीधे न्यूनतम आमदनी मुहैया कराये।

इस मुहिम से जुड़ने के लिए यहाँ सम्पर्क करें :

https://www.facebook.com/RightToPublicHealth

कायर संघियों का मुहिम के कार्यकर्ताओं पर हमला

संघी सच से इतना डरते हैं कि महामारी के दौर में लोगों को जागरूक करने की मुहिम भी उनसे बर्दाश्त नहीं होती। इस मुहिम के दौरान देश की कई जगहों पर अन्धभक्तों और संघी कार्यकर्ताओं से बहसें-झड़पें हुईं लेकिन लखनऊ में तो संघियों ने नौजवान भारत सभा और स्त्री मुक्ति लीग के कार्यकर्ताओं पर हमला ही कर दिया। 17 मई को नौभास के अविनाश व अनुपम और स्त्री मुक्ति लीग की रूपा डालीगंज इलाक़े में 'जन स्वास्थ्य अधिकार मुहिम' के तहत लोगों से सम्पर्क कर रहे थे, तो पहले से घात लगाये बैठे संघियों ने उन पर ऐसे बेहूदे आरोप लगाने शुरू कर दिये कि "तुम तो नक्सली हो", "तुम यहाँ कोरोना फैलाने आये हो", "दिल्ली की ही तरह यहाँ भी बवाल करने आये हो", "हिन्दू-मुस्लिम को लड़वाने आये हो" और साथ ही गन्दी गालियाँ देने लगे। यह देखकर कि मोहल्ले के लोग उनकी बातों में नहीं आ रहे हैं और कार्यकर्ताओं का ही साथ दे रहे हैं, ये संघी और भी ज़्यादा बौखला उठे और मारपीट की कोशिश करने लगे। पुलिस ने मारपीट करने वाले संघियों पर कोई कार्रवाई करने के बजाय मुहिम के साथियों पर ही महामारी एक्ट की विभिन्न धाराओं में केस दर्ज कर लिया और उनकी ओर से की गयी एफ़आईआर दर्ज करने से ही इंकार कर दिया। अब अदालत के ज़रिए एफ़आईआर दर्ज करने और पुलिस अफ़सर सहित सभी दोषियों पर कार्रवाई की लड़ाई जारी है।

सालों से उपेक्षित बिहार की स्वास्थ्य व्यवस्था की असलियत और कोरोना महामारी में उजागर होते उसके भयावह नतीजे!

– वारुणी पूर्वा

जिस प्रकार देश में कोरोना महामारी की स्थिति को छुपाने में मोदी सरकार लगी हुई है, उसी प्रकार जदयू-भाजपा की गठबन्धन सरकार बिहार की ज़मीनी हक़ीक़त को दबाने की पूरी कोशिश कर रही है! कोरोना से हुई मौत के आँकड़ों में हेरफेर कर असली आँकड़ों को दबाने की पूरी कोशिश की गयी परन्तु सच्चाई किसी से नहीं छुपी है।

बिहार के बक्सर ज़िले में गंगा में बहते शवों की तस्वीर ने सबको हिलाकर रख दिया था। पटना हाई कोर्ट में 17 मई को राज्य के मुख्य सचिव और पटना प्रमंडल आयुक्त ने बक्सर में मौतों के सम्बन्ध में अलग अलग आँकड़े पेश किये। राज्य के मुख्य सचिव के अनुसार 1 मई तक बक्सर जिले में सिर्फ़ 6 मौतें हुई थीं और पटना प्रमंडल आयुक्त द्वारा पेश एफ़िडेविट में बताया गया था कि सिर्फ़ 5 मई से 14 मई तक में 789 मृत लोगों का अन्तिम संस्कार किया गया है। यह भी सिर्फ़ एक घाट पर हुए अन्तिम संस्कार का आँकड़ा है! ठीक यही स्थिति पटना में भी थी। बिहार स्वास्थ्य विभाग के अनुसार 1 अप्रैल से 30 अप्रैल तक पटना में 293 मौतें हुई लेकिन पटना नगर निगम के अनुसार इतने ही दिनों में सिर्फ़ बाँसघाट में 939 शवों को कोविड प्रोटोकॉल के तहत जलाया गया। इसके अलावा गुलाबी घाट में 441, खाजेकलां में 107 व शाहगंज में 35 मृत लोगों की संख्या पायी गयी। मीडिया द्वारा इस पर सवाल उठाये जाने के बाद ही पटना हाई कोर्ट ने मामले में दखल दिया और मौत के आँकड़ों के ऑडिट का आदेश जारी किया।

सरकारी रिपोर्ट में 8 जून तक बिहार में हुई मौतों की संख्या 5,500 बताई जा रही थी जोकि बढ़ कर 9 जून को अचानक 9,429 हो गयी! असलियत यह थी कि यह एक दिन की मौतों का आँकड़ा नहीं था बल्कि ऑडिट के बाद मौतों की असल संख्या पता चली तब उसे सरकारी रिपोर्ट में दर्ज किया गया! 'द वायर' के एक संवादाता के अनुसार अकेले पटना में 1 अप्रैल से 20 मई तक जितनी मृतकों की संख्या रिपोर्ट की जा रही थी, असल में उससे 452.4% ज़्यादा की संख्या में शवों को घाटों पर जलाया गया था। हालाँकि 9 जून के ये सरकारी आँकड़े भी बिहार में मौतों के ताण्डव की पूरी सच्चाई उजागर नहीं करते। इनमें वे मौतें शामिल नहीं हैं जो दूरदराज़ के गाँवों में हुईं जहाँ न तो कोई स्वास्थ्य केन्द्र है और न ही कोरोना जाँच की सुविधा। इनमें वे मौतें भी शामिल नहीं जो होम आइसोलेशन में हुईं या फिर अस्पताल ले जाते वक़्त रास्ते में ही जिनकी मौत हो गयी। बिहार में कई जगह से ऐसी भी ख़बरें आयीं कि कोरोना पॉज़िटिव रिपोर्ट आने के बाद भी मृत्यु प्रमाण पत्र में कोरोना से हुई मौत को नहीं दर्ज किया जा रहा है। ये सब गुमनाम मौतें हैं जो कहीं भी दर्ज नहीं हुईं।

कोरोना महामारी में बिहार के शहरों व गाँव की स्थिति

अप्रैल माह में बिहार के शहरों में कोरोना संक्रमण की स्थिति बेहद गम्भीर हो गयी थी और एक के बाद एक मौतों का सिलसिला रुकने का नाम नहीं ले रहा था। लोग ऑक्सीजन, बेड, दवा के लिए बिलखते हुए इधर से उधर भाग रहे थे। आर्थिक रूप से सक्षम लोग कुछ हद तक अपने परिजनों को बचाने में कामयाब रहे लेकिन ग़रीब आबादी के पास ख़स्ताहाल सरकारी अस्पतालों के अलावा कोई विकल्प नहीं था। बिहार के सबसे जाने-माने अस्पताल पी.एम.सी.एच. के कोरोना वार्ड की ऐसी स्थिति थी कि मरीज को पूरे सप्ताह तक डॉक्टर देखने हीं नहीं आते थे। लोगों को मरने के लिए उनके हाल पर छोड़ दिया गया था। बिहार के दूसरे सबसे बड़े अस्पताल दरभंगा मेडिकल अस्पताल की हालत यह थी कि भारी बारिश के बाद पूरा अस्पताल नाले के गन्दे पानी में डूबा हुआ था और उसी पानी में खड़े-खड़े डॉक्टर मरीज़ का इलाज करने को मजबूर थे! अप्रैल माह में बिहार के ज़िलों के ज़्यादातर अस्पतालों में कोई ख़ाली आई.सी.यू. बेड नहीं मिल रहे थे। पी.एम. केयर फण्ड से जो 100 वेंटीलेटर आये थे, उनमे से मुश्किल से 10 वेंटीलेटर काम कर रहे थे। ऐसी हालत इसलिए थी क्योंकि वेंटीलेटर को चलवाने के लिए बिहार सरकार के पास स्टाफ़ ही नहीं था। अस्पताल और स्वास्थ्य व्यवस्था इस महामारी से निपटने के लिए किस हद तक तैयार थी, इस बात का अंदाज़ा सिर्फ़ मौत के आँकड़ों से ही नहीं बल्कि अस्पतालों की पंगु हालत से भी लगाया जा सकता है। शहरों के अस्पतालों में मरीज़ों की भीड़ और ज़्यादा इसलिए भी थी क्योंकि गाँवों के लोग शहर आकर इलाज कराने को मजबूर थे क्योंकि गाँव या पास के क़स्बे में इलाज की कोई व्यवस्था नहीं थी।

शहरों में कोरोना के प्रकोप और सरकारी बदइन्तज़ामी तो मीडिया के ज़रिए सामने आ भी जा रही थी लेकिन बिहार के गाँवों की स्थिति की ख़बर भी नहीं बन रही थी। लगभग हर गाँव से यही सुनने को मिल रहा है कि ज़्यादातर लोगों में बुखार, सर्दी, खाँसी जैसे कोरोना के लक्षण मौजूद हैं। कहीं कोई टेस्टिंग की सुविधा नहीं है और ना ही कोरोना के इलाज की व्यवस्था है। लोग सीधे मर रहे हैं या फिर ज़्यादा गम्भीर होने पर पास के शहर में इलाज के लिए भाग रहे हैं। ज़्यादातर लोग आस-पास किसी गाँव के ही डॉक्टर को दिखा रहे हैं, कुछ घरेलू उपचार से काम चला रहे हैं। इनमें से जिनके शरीर में लड़ने की क्षमता ज़्यादा थी, वह जीवित है और जिनका शरीर नहीं लड़ पाया वे सही समय पर इलाज नहीं मिलने के कारण मारे जा रहे हैं। हर गाँव में स्थिति भयावह है।

विशेषज्ञों द्वारा पहले ही दूसरी लहर आने की चेतावनी दी जा चुकी थी और ख़ास तौर पर बिहार के पंगु स्वास्थ्य व्यवस्था को देख यहाँ और बड़े स्तर पर इंतज़ाम करने की ज़रूरत थी। लेकिन सरकार ने उल्टा रुख अपनाया। राज्य के बाहर से आने वाले यात्रियों के लिए पिछले साल जो पहले क्वारंटाइन सेंटर बनाये गये थे, वे सब बन्द कर दिये गये। बाहर से गाँव में प्रवेश करने वाले लोगों की कोई कोरोना जाँच नहीं करायी गयी। इस लापरवाही ने संक्रमण को फैलने का मौका दिया। पिछले 5-6 महीने के दौरान स्वास्थ्य सम्बन्धी जो व्यवस्थाएँ की जा सकती थीं, उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया। इन्हीं सब का नतीजा था कि कोरोना की दूसरी लहर में बिहार में लाशें बह रही थीं और नितीश सरकार आँखों पर पट्टी बाँधे झूठ पर झूठ बोल रही थी।

बिहार में सरकार की आपराधिक लापरवाही के अलावा इतनी अधिक मौतों का एक बहुत बड़ा कारण यहाँ की बुरी तरह बदहाल और निकम्मी स्वास्थ्य व्यवस्था भी रही। यही कारण है कि अन्य राज्यों के मुकाबले यहाँ कम संक्रमण दर होने के बावजूद डॉक्टरों की सबसे बड़ी संख्या में मृत्यु बिहार में हुई? इंडियन मेडिकल एसोसिएशन के अनुसार बिहार में 84 डॉक्टर कोरोना की दूसरी लहर में मारे गये जबकि पिछले साल करीब 30 डॉक्टरों की कोरोना से मृत्यु हुई थी। इतनी बड़ी संख्या में डॉक्टरों की मौत का कारण साफ़ है। सरकार द्वारा सुरक्षा व्यवस्था के कोई इंतज़ाम नहीं किये गये थे—पी.पी.ई किट की कमी, चौतरफ़ा बदइन्तज़ामी और पूरे राज्य में डॉक्टरों की कम संख्या होने के कारण एक-एक डॉक्टर पर कोरोना मरीज़ों के केस का ज़्यादा भार होना। पिछले साल कोरोना योद्धा के नाम पर फूल बरसाने वाली और 50 लाख का मुआवज़े की घोषणा करने वाली मोदी सरकार की तरफ से अभी तक इन डॉक्टरों को कोई मुआवज़ा नहीं मिला है! बिहार सरकार द्वारा भी 4 लाख रुपये देने की घोषणा की गयी थी लेकिन अभी तक सिर्फ़ एक डॉक्टर को मुआवज़ा मिला है।

चिकित्सा क्षेत्र के विशेषज्ञों ने पहले ही चेता दिया था कि बिहार कोरोना की दूसरी लहर को नहीं सँभाल सकता। और यही हुआ भी! कोरोना की पहली लहर में सरकार ने तीन स्तर के कोरोना सेंटर खड़ा करने की योजना बनायी थी। पहला, कोविड केयर सेंटर, जिसमें बहुत हलके लक्षण वाले कोरोना मरीजों की देखभाल की जाती, दूसरा, डेडिकेटेड कोविड हेल्थ सेंटर, जिसमें उन मरीजों का इलाज होता जो ज़्यादा गम्भीर नहीं हैं लेकिन जिन्हें ऑक्सीजन पर रखने की ज़रूरत पड़ सकती है और तीसरा, डेडिकेटेड कोविड अस्पताल, जिसमें कोरोना के गम्भीर मरीज़ों का इलाज होता और जहाँ आई.सी.यू. बेड से लेकर वेंटीलेटर आदि हर चीज़ की सुविधा उपलब्ध होती। मगर स्वास्थ्य मंत्रालय के अनुसार बिहार के ज़्यादातर ज़िलों में सिर्फ़ हलके लक्षणों का इलाज करने वाले कोविड केयर सेंटर ही मौजूद हैं, जिनके पास न ऑक्सीजन उपलब्ध हैं और न कोई डॉक्टर। पूरे राज्य में मात्र 12 ऐसे डेडिकेटेड कोविड हॉस्पिटल हैं जो कोरोना के गम्भीर मरीजों का इलाज कर सकते हों। पटना, भागलपुर, दरभंगा, गया, मधेपुरा, मुज़फ़्फ़रपुर, नालन्दा और

पश्चिमी चम्पारण के अलावा और कहीं भी गम्भीर कोरोना मरीज़ों का इलाज करने के लिए अस्पताल मौजूद नहीं हैं! ऐसे में समझा ही जा सकता है कि गाँव में लोग क्यों सीधे मारे जा रहे हैं!

बिहार में गाँव पंचायत के स्तर पर स्वास्थ्य व्यवस्था की तस्वीर यह है कि यहाँ पर मात्र 524 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र हैं और वे महीनों बन्द रहते हैं। बहुत नसीब हुआ तो कभी-कभार डॉक्टर इन केन्द्रों पर दिख जाते हैं लेकिन इनमें कोरोना के इलाज की कोई सुविधा नहीं है। पिछले साल कोरोना के संक्रमण को देखते हुए सरकार ने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र को अपग्रेड कर 176 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र तो बना दिया लेकिन वह मात्र एक ढाँचा बनकर रह गया है! इतने केन्द्रों को चलाने के लिए 10,736 डॉक्टर और दूसरे कर्मियों की ज़रूरत है लेकिन अभी सिर्फ़ 2992 कर्मियों से ही काम चलाया जा रहा है। 7744 पद ख़ाली पड़े हैं। बिहार में गाँव स्तर पर टेस्टिंग की कोई सुविधा तो उपलब्ध नहीं ही है, कुल 23 ज़िला अस्पतालों में से 16 अस्पतालों में सी.टी. स्कैन की भी व्यवस्था नहीं है जिससे कि वक़्त रहते लोगों में कोरोना संक्रमण का पता चल सके। बिहार के 38 में से 16 ज़िलों में आई.सी.यू. बेड मौजूद ही नहीं हैं! 2011 की जनगणना के अनुसार इन 16 ज़िलों की कुल जनसंख्या करीब 4 करोड़ 39 लाख है, ऐसे में हम समझ सकते हैं कि पूरे कोरोना काल में बिहार की स्वास्थ्य व्यवस्था आखिर किस प्रकार मरते लोगों को वेंटीलेटर और इलाज मुहय्या करा रही होगी!

बिहार में लम्बे समय से डॉक्टर व मेडिकल स्टाफ़ के हजारों पद ख़ाली पड़े रहे हैं जिनकी भरती पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। बिहार सरकार द्वारा पटना हाई कोर्ट में दिये शपथपत्र से यह पता चला कि यहाँ 11,645 पदों में केवल 2877 पदों पर बहाली हुई है, बाक़ी 8768 पद ख़ाली पड़े हैं! उसमें भी 5674 पद ग्रामीण इलाक़ों में ख़ाली हैं। यहाँ हर 8,645 लोगों पर एक अस्पताल बेड है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानक के अनुसार हर 1000 व्यक्ति पर एक डॉक्टर होना चाहिए परन्तु यहाँ पूरे राज्य में मात्र 2,792 सरकारी डॉक्टर हैं, यानी हर 43,788 लोगों पर एक सरकारी डॉक्टर है! बिहार में नर्स व पैरा मेडिकल स्टाफ़ की भी करीब 75 प्रतिशत पोस्ट ख़ाली पड़ी हैं। यही कारण है कि नीति आयोग के अनुसार 2017-18 और 2019-20 के बीच स्वास्थ्य के मामले में देश के 28 राज्यों में से बिहार 25वें स्थान पर था।

इस राज्य में आज भी हज़ारों लोग उन बीमारियों से मरते रहते हैं जिनका इलाज दशकों पहले खोजा जा चुका है। स्वास्थ्य व्यवस्था की असलियत तो यहाँ की ग़रीब आबादी पहले से ही जानती है और उससे उपजी तबाही हर बार झेलती है लेकिन इस महामारी ने मध्यम वर्ग से आने वाले लोगों के सामने भी चिकित्सा व्यवस्था पर सवालिया निशान खड़ा कर दिया है। बिहार में स्वास्थ्य पर ख़र्च का 75 प्रतिशत हिस्सा आम आबादी को ख़ुद उठाना होता है और मात्र 25 प्रतिशत सरकार ख़र्च करती है। राज्य के कुल अस्पतालों में सरकारी अस्पतालों की संख्या मात्र 30 प्रतिशत है, बाकी 70 प्रतिशत अस्पताल निजी हैं। ऐसे में उन लोगों को ही बेहतर चिकित्सा नसीब होती है, जिनके पास इलाज में ख़र्च करने के लिए लाखों रुपए है। जिनके पास पैसे नहीं हैं, इस मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था में उनकी जान की कोई क़ीमत नहीं होती। इस महामारी में भी निजी अस्पतालों की लूट का कारोबार जारी था। तमाम जगह दवाओं व ऑक्सीजन सिलिंडर की कालाबाज़ारी चालू थी और सरकार कोई करवाई नहीं कर रही थी। इस महामारी ने एक बार यह साबित किया है कि मुनाफ़े पर टिकी इस मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था में लोगों की जान की कोई क़ीमत नहीं होती।

पूँजीवादी किसान, पूँजीवादी ज़मींदार, आढ़तिये, व्यापारी और बिचौलिये किस तरह गाँव के ग़रीबों को लूटते हैं?

हमारे देश में क़रीब 25 करोड़ लोग खेती में लगे हैं। इसमें से क़रीब 14.5 करोड़ खेतिहर मज़दूर हैं और 10.5 करोड़ किसान हैं। लेकिन किसान कोई एक वर्ग नहीं होता है। धनी किसान होते हैं, उच्च मध्यम किसान, मध्य मध्यम किसान, निम्न मध्यम किसान होते हैं और ग़रीब व सीमान्त किसान होते हैं।

आम तौर पर, धनी व उच्च मध्यम किसान पूँजीवादी किसान होते हैं। पूँजीवादी किसान कौन है? पूँजीवादी किसान वे होते हैं जो मज़दूरी पर मज़दूर रखकर खेती करवाते हैं। ये खेतिहर मज़दूरों के उजरती श्रम का शोषण करते हैं और उनके श्रम से पैदा खेती उत्पाद को बेचकर मुनाफ़ा कमाते हैं। अपनी ज़मीन पर खेती करने के साथ पूँजीवादी खेती की ज़रूरतों के मुताबिक़ ये कई बार ज़मीन किराये पर भी लेते हैं और कभी फ़ायदेमन्द होने पर ज़मीन किराये पर देते भी हैं और पूँजीवादी ज़मींदार के समान लगानख़ोरी भी करते हैं। कुछ पूँजीवादी काश्तकार किसान भी होते हैं, जिनके पास पर्याप्त पूँजी होती है और वह ज़मीन किराये पर लेकर पूँजीवादी खेती करते हैं। ये स्वयं ज़मीन के मालिक नहीं होते हैं, बल्कि पूँजीवादी ज़मींदार से ज़मीन किराये पर लेते हैं, पूँजी निवेश करते हैं, मज़दूरों को भाड़े पर रखकर बाज़ार के लिए पूँजीवादी माल उत्पादन करते हैं। यानी पूँजीवादी किसानों के दो हिस्से हैं : पूँजीवादी मालिक किसान और पूँजीवादी काश्तकार किसान।

मध्य मध्यम किसानों में किसानों का वह हिस्सा आता है जो नियमित तौर पर मज़दूर नहीं रखता है, अपने और अपने पारिवारिक श्रम से खेती करता है। वह सामान्य माल उत्पादक है, जो कि बाज़ार के लिए पैदा करता है, लेकिन वह नियमित तौर पर मज़दूरों का शोषण नहीं कर पाता है। उसकी आकांक्षाएँ धनी या उच्च मध्यम पूँजीवादी किसान बनने की होती हैं, लेकिन उसका बहुत छोटा हिस्सा ही पूँजीवादी किसान बन पाता है और बड़ा हिस्सा तबाह होकर मज़दूरों की जमात में शामिल होता जाता है।

ग़रीब और सीमान्त किसान वे हैं जो उजरती श्रम का शोषण नहीं करते हैं और मुख्य तौर पर ख़ुद ही मज़दूर बन चुके होते हैं। यानी, अब उनकी आमदनी का बड़ा हिस्सा खेती से नहीं आता है बल्कि मज़दूरी से आता है। उसके पास छोटी जोत होती है। वह जो उगाता है उसका बड़ा हिस्सा बाज़ार में ही बेचता है। लेकिन उससे होने वाली आय से उसके परिवार का ख़र्च नहीं चलता है। नतीजतन, उसे दूसरे के खेतों पर भी काम करना पड़ता है, उसके घर से कुछ सदस्य बाहर जाकर भी मज़दूरी करते हैं। कई बार ये किसान भी थोड़ी-मोड़ी ज़मीन किराये पर लेते हैं, लेकिन तब भी वे अपने परिवार और अपने श्रम के आधार पर ही खेती करते हैं और लगान के रूप में अपनी आमदनी का बड़ा हिस्सा पूँजीवादी भूस्वामी के हवाले कर देते हैं। उस सूरत में ये "अपना शोषण स्वयं ही करते हैं" क्योंकि अपनी न्यूनतम आवश्यकता के अलावा वे अपनी पूरी कमाई ही पूँजीवादी ज़मींदार के हवाले करने को मजबूर होते हैं। नतीजतन, उनकी हालत अक्सर मज़दूरों से भी बुरी हो जाती है।

इसके अलावा कुछ पूँजीवादी भूस्वामी होते हैं, जो स्वयं खेती करवाने की पूरी प्रक्रिया और उजरती श्रम के सीधे शोषण की प्रक्रिया से जुड़े नहीं होते हैं। वे केवल ज़मीन किराये पर देते हैं और उसका किराया/लगान खाते हैं। जिनके पास बेहतर ज़मीनें होती हैं, उन्हें ज़्यादा लगान मिलता है। लेकिन जिनके पास सबसे ख़राब ज़मीनें होती हैं, वे भी अपनी ज़मीन मुफ़्त में किराये पर नहीं देते हैं। देंगे भी क्यों? ज़ाहिर है, उन्हें ज़्यादा उपजाऊ और बेहतर जगहों पर मौजूद ज़मीनों के मालिकों जितना लगान नहीं मिलता है। लेकिन उन्हें भी लगान प्राप्त होता है। इस लगान की वजह से खेती का उत्पाद महँगा होता है। इसे निरपेक्ष लगान कहा जाता है। बेहतर ज़मीन के पूँजीवादी ज़मींदारों को उस ज़मीन पर अधिक लगान मिलता है क्योंकि इन ज़मीनों पर खेती की लागत कम होती है और पूँजीवादी काश्तकार किसान को अतिरिक्त मुनाफ़ा प्राप्त होता है, जो उसे पूँजीवादी ज़मींदार को सौंपना पड़ता है। इसे विभेदक लगान कहते हैं। इसकी वजह से खेती उत्पाद की क़ीमत नहीं बढ़ती है, क्योंकि यह ज़मीन के ज़्यादा उपजाऊ होने व उसकी अनुकूल जगह के चलते उत्पादन की कम लागत के कारण होने वाले अतिरिक्त मुनाफ़े से पैदा होता है। जबकि निरपेक्ष लगान क़ीमतों को बढ़ाता है और इस रूप में वह उस अतिरिक्त मुनाफ़े को पैदा करता है, जो कि निरपेक्ष लगान के रूप में ज़मींदार को प्राप्त होता है। यानी कि सबसे ख़राब ज़मीन के पूँजीवादी ज़मींदार को केवल निरपेक्ष लगान हासिल होता है जबकि उससे बेहतर ज़मीन वालों को ज़मीन के उपजाऊपन और उसके स्थान के अनुसार अलग-अलग मात्रा में विभेदक लगान प्राप्त होता है। पूँजीवादी ज़मींदार लगानजीवी होता है।

वास्तव में, अगर आप समाज में देखेंगे तो पूँजीवादी मालिक किसानों और पूँजीवादी ज़मींदारों के वर्ग में थोड़ी ओवरलैपिंग होती है। यानी कुछ पूँजीवादी मालिक किसान ऐसे भी मिलेंगे जो अपनी कुछ ज़मीन किराये पर भी चढ़ाते हैं और उसका लगान खाते हैं। जिस हद तक वे लगानख़ोर होते हैं, उस हद तक वे पूँजीवादी ज़मींदार के समान बर्ताव करते हैं और जिस हद तक वे स्वयं उजरती मज़दूरों को रखकर उनका शोषण करते हैं और मुनाफ़ा खाते हैं,

• अभिनव

उस हद तक वे एक उद्यमी पूँजीपति के रूप में बर्ताव करते हैं। ये सभी श्रेणियाँ हैं जो आपको समाज में हमेशा हूबहू इसी रूप में नहीं मिलेंगी। समाज में जिस ठोस रूप में यथार्थ मौजूद होता है, उसमें ये विश्लेषणात्मक श्रेणियाँ अक्सर मिले-जुले रूप में मौजूद होती हैं।

पूँजीवादी किसान यदि काश्तकार है, तो वह औसत मुनाफ़ा कमाता है और खेती उत्पादों की निरपेक्ष लगान की वजह से ऊँची हुई क़ीमतों से उसे जो बेशी मुनाफ़ा प्राप्त होता है, उसे वह पूँजीवादी ज़मींदार के हवाले कर देता है। पूँजीवादी किसान अगर ख़ुद मालिक है, तो यह बेशी मुनाफ़ा भी उसकी जेब में जाता है।

हम **मज़दूरों को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि चाहे पूँजीवादी किसान का मुनाफ़ा हो या पूँजीवादी ज़मींदार का लगान, यह मज़दूरों के श्रम के शोषण से ही पैदा होता है।** मज़दूर की मेहनत से पैदा होने वाले नये मूल्य का ही एक हिस्सा बेशी मूल्य होता है। उपज के कुल मूल्य में से मज़दूर की मज़दूरी देने के बाद जो बचता है, वह बेशी मूल्य कहलाता है। यह बेशी मूल्य ही पूँजीवादी किसान के मुनाफ़े और पूँजीवादी ज़मींदार के लगान का स्रोत होता है। यही सूदख़ोर के सूद का स्रोत भी होता है और यही व्यापारी पूँजीपति के वाणिज्यिक मुनाफ़े का स्रोत भी होता है। मज़दूर वर्ग के श्रम से पैदा हुआ यही बेशी मूल्य समाज के सभी परजीवी वर्गों की आय का स्रोत है, चाहे वह औद्योगिक या खेतिहर पूँजीपति हो, पूँजीवादी भूस्वामी हो, वित्तीय पूँजीपति या सूदख़ोर हो, या फिर व्यापारी पूँजीपति हो। यह बेशी मूल्य पूँजीपति वर्ग के इन अलग-अलग हिस्सों में विभाजित होता है।

बहरहाल, **हमारे देश में कुल किसान क़रीब 10.5 करोड़ हैं। इनमें से 92 प्रतिशत के पास 5 एकड़ से कम ज़मीन है। 86 प्रतिशत के पास 3 एकड़ से कम ज़मीन है। यानी 9 से सवा 9 करोड़ ग़रीब और सीमान्त किसान तथा मध्यम व निम्न मध्यम किसान हैं, जिनमें से अधिकांश का घर-ख़र्च पूरी तरह से खेती से नहीं चल पाता है। इनकी मासिक आमदनी का 50 से 70 प्रतिशत हिस्सा मज़दूरी से आता है। ये मध्यम व निम्न मध्यम तथा ग़रीब और सीमान्त किसान मूलत: अर्द्धसर्वहारा या अर्द्धमज़दूर हैं और गाँवों के सबसे शोषित तबकों में से एक हैं।**

इसके अलावा **क़रीब एक से सवा करोड़ उच्च मध्यम और धनी पूँजीवादी किसान हैं जो कि उजरती श्रम के नियमित तौर पर शोषक हैं।** इसी में पूँजीवादी भूस्वामियों की एक आबादी भी शामिल है, हालाँकि पूरी आबादी नहीं। वजह यह कि कुछ पूँजीवादी मालिक किसान ज़मीन लगान पर भी देते हैं। ये अधिकांश चार हेक्टेयर (दस एकड़) से ऊपर वाले किसान हैं, हालाँकि अलग-अलग राज्यों में जोत की आकार के अनुसार आमदनी के आँकड़े अलग-अलग हैं। जिन राज्यों में उपजाऊ ज़मीन, सिंचाई की सुविधा और पूँजी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, वहाँ तीन हेक्टेयर (7.5 एकड़) की जोत भी पूँजीवादी खेती के लिए उपयुक्त है, तो कुछ अन्य राज्यों में जहाँ ये तीनों ही चीज़ें कम हैं, वहाँ पाँच हेक्टेयर की ज़मीन का मालिक किसान भी मँझोला किसान ही कहलायेगा। लेकिन देश के औसत से देखें तो आम तौर पर चार हेक्टेयर से अधिक की खेती करने वाले किसानों को उच्च मध्यम या धनी पूँजीवादी किसानों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

इस वर्ग की औसत आय कितनी है? कुछ आँकड़ों पर निगाह दौड़ा लेते हैं।

पटियाला विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के पवनदीप कौर, गियान सिंह व सर्बजीत सिंह के नमूना सर्वेक्षण के अनुसार पंजाब के 10 हेक्टेयर से अधिक ज़मीन वाले किसानों की सालाना आय है, रुपये 12,02,780.38 रुपये प्रति वर्ष, यानी क़रीब रुपये 1,00,231 प्रति माह। उनका सालाना उपभोग रुपये 11,36,247.03 सालाना है, यानी प्रति माह वे रुपये 94,688 अपने उपभोग पर ख़र्च करते हैं। यानी हर वर्ष इनको 66,533.35 रुपये की शुद्ध बचत होती है। ये वे बड़े किसान हैं जो कि अपने खेतों में स्वयं काम नहीं करते, बल्कि उजरती श्रमिकों का शोषण करके मुनाफ़ा कमाते हैं। **इनकी आय सीमान्त किसानों से 6 गुना और खेतिहर मज़दूरों से 12 गुना ज़्यादा है। अगर ये धनी किसान नहीं हैं, तो क्या हैं?**

चार हेक्टेयर से अधिक ज़मीन रखने वालों की घोषित आमदनी लगभग 5,66,408 रुपये सालाना है, यानी लगभग 47,201 रुपये प्रति माह। यह भी देश की कुल वर्ग संरचना के मुताबिक उच्च मध्य व मध्यम वर्ग में ही आयेगा।

लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि **यह घोषित आय धनी और उच्च मध्यम किसानों की कुल आय का केवल एक हिस्सा है। उनकी वास्तविक आय इससे कहीं ज़्यादा है।** आइये देखते हैं कैसे।

इनकी वास्तविक आय (घोषित व अघोषित) का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा सूद और लगान से भी आता है। (यह रिपोर्ट पढ़ें : https://www.firstpost.com/business/money-lending-by-punjabs-rich-farmers-is-widening-the-wealth-gap-in-states-countryside-4437131.html)

इस रिपोर्ट के अनुसार, पंजाब के धनी व उच्च मध्यम किसान अपनी आय का केवल एक हिस्सा घोषित करते हैं और केवल यह घोषित हिस्सा ही बैंकों में जमा करते हैं। हमारे पास जो आँकड़े हैं, वे केवल इसी घोषित आय के हैं। लेकिन पंजाब के अधिकांश धनी व उच्च मध्यम किसान स्वयं सूदख़ोर भी हैं। वे आम तौर पर 22 प्रतिशत से लेकर 30 प्रतिशत तक की ब्याज दर पर ग़रीब व निम्न-मँझोले किसानों को क़र्ज़ देते हैं। यह सारा लेन-देन नक़द में होता है और इसे कहीं भी घोषित नहीं किया जाता है। इन धनी किसानों को स्वयं वाणिज्यिक बैंकों से कहीं कम दर पर ऋण मिलता है। मिसाल के लिए, ट्रैक्टर ख़रीदने के लिए ऋण की ब्याज दर वाणिज्यिक बैंकों में अधिक से अधिक 12 प्रतिशत है। और **ये धनी किसान स्वयं ग़रीब व निम्न मँझोले किसानों से 24 से 30 प्रतिशत तक की ब्याज दर पर वसूली करते हैं।**

लुधियाना के गिल गाँव के 3 एकड़ की ज़मीन के छोटे किसान सौदागर सिंह का कहना है, "अपनी ज़मीन को ठेके पर देने के बाद, जिससे कि इनको 24 लाख से 5 करोड़ के बीच की सालाना आमदनी होती है, धनी किसान आम तौर पर सम्पत्ति ख़रीदने और अपने धन्धे को वैविध्यपूर्ण बनाने पर पैसा ख़र्च करते हैं। जो पैसा उनके पास बचता है उसे बेहद ऊँची ब्याज दरों पर क़र्ज़ के रूप में ग़रीब किसानों को देते हैं।" स्वयं सौदागर सिंह ने लुधियाना में बस चुके एक पूँजीवादी भूस्वामी से ट्रैक्टर ख़रीदने के लिए 4 लाख रुपये का क़र्ज़ 24 प्रतिशत ब्याज दर पर लिया है।

उपरोक्त रिपोर्ट के अनुसार, ये लेन-देन बिरले ही कहीं दर्ज होते हैं और ये ग़रीब किसानों को क़र्ज़ के ऐसे जाल में फँसा देते हैं कि वे उससे कभी निकल ही नहीं पाते हैं। पंजाब में आत्महत्या करने वाले अधिकांश किसान ये ही ग़रीब किसान हैं। पंजाब की कृषि पर अपने शोध-कार्य के लिए प्रसिद्ध प्रो. सरदारा सिंह जोहल के अनुसार, "हमारे राज्य में बड़े किसान छोटे किसानों को बेहद ऊँची ब्याज दरों पर क़र्ज़ देते हैं। लेकिन, इसके सही आँकड़े का आकलन कर पाना मुश्किल है।" वजह यह है कि यह लेन-देन कहीं दर्ज नहीं होता है और यह धनी किसानों व उच्च मध्यम किसानों की अघोषित आय होती है।

पंजाब के धनी किसान हरकीरत बाजवा जो कि 32 एकड़ के मालिक हैं, स्वयं बताते हैं कि सूद पर पैसा चलाना तो पीढ़ियों से चली आ रही परम्परा है और पंजाब के धनी किसान इस पर अमल करते ही हैं। बाजवा यह भी बताते हैं (मानो ऊँची ब्याज दर पर क़र्ज़ देकर धनी किसान ग़रीब किसानों पर कोई अहसान करते हों!) कि बैंक से

(पेज 8 पर जारी)

पूँजीवादी किसान, पूँजीवादी ज़मींदार, आढ़तिये, व्यापारी और बिचौलिये किस तरह गाँव के ग़रीबों को लूटते हैं?

(पेज 7 से आगे)

ऋण लेना ग़रीब किसान के लिए बहुत मुश्किल और टेढ़ा होता है, जबकि बस अपने ज़मीन के कागज़ात गिरवी रखकर ग़रीब किसान धनी किसान से क़र्ज़ ले सकता है! एक धनी किसान ऐसी भाषा बोल रहा है, इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है, लेकिन तमाम नरोदवादी, संशोधनवादी और सुधारवादी भी यही बातें बोल रहे हैं, यह बताता है कि ये इन्हीं धनी किसानों-कुलकों के वर्ग हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं!

ग़रीब किसान इन्हीं क़र्ज़ों तले दबकर आत्महत्याएँ कर रहे हैं और अपनी ज़मीनों से हाथ भी धो रहे हैं। संगरूर ज़िले के एक छोटे किसान गुरदेव सिंह सन्धू बताते हैं कि उन्होंने पिछले वर्ष नवम्बर में बेटी की शादी के लिए एक धनी किसान से 3 लाख रुपये का क़र्ज़ लिया था और अपनी ज़मीन के कागज़ गिरवी रखे थे। अगले नवम्बर तक उन्हें 3.60 लाख रुपये वापस करने हैं और तभी उन्हें उनकी ज़मीन के कागज़ वापस मिलेंगे।

ये धनी और उच्च मध्यम किसान सूदख़ोरी से जो अघोषित आय कमाते हैं, उसी के बूते ये अपने अन्य व्यवसायों को भी फैलाते हैं, जिनमें प्रमुख है प्रापर्टी डीलिंग, बैंक्वेट व मैरिज हॉल, पोल्ट्री, कार-वॉश सेण्टर, आदि। ज़रा सोचिये, अकेले लुधियाना में धनी किसानों के 25 मैरिज हॉल हैं! ये धनी किसान नहीं हैं, तो और क्या हैं? मोगा ज़िले में 40 एकड़ के मालिक रमनीक सिंह ने पूँजीवादी खेती के मुनाफ़े और साथ ही सूदख़ोरी के जमा धन के बूते मुल्लांपुर ज़िले में पोल्ट्री का व्यवसाय खोला है।

एक रिपोर्ट के अनुसार, पंजाब और हरियाणा में 4 हेक्टेयर से अधिक की खेती वाले और गेहूँ व चावल उगाने वाले किसानों की प्रति हेक्टेयर आय 1.25 लाख रुपये प्रति वर्ष है। पंजाब के किसानों के लिए प्रति हेक्टेयर खेती की लागत भी बाक़ी भारत से बहुत कम है, जिसकी वजह है राज्य द्वारा धनी किसानों को पंजाब में दिया गया संरक्षण। गेहूँ के लिए पंजाब में खेती की लागत बाक़ी भारत की औसत लागत का मात्र 75 प्रतिशत है जबकि चावल के लिए यह मात्र 59 प्रतिशत है। पंजाब और हरियाणा में सबसे बड़े 3.7 प्रतिशत किसानों का कुल ज़मीन के 36.3 प्रतिशत पर कब्ज़ा है।

ऊपर से इन धनी किसानों पर कोई टैक्स नहीं लगता। पंजाब और हरियाणा के 1,97,000 सबसे धनी किसानों की जोत का औसत आकार है 6.3 हेक्टेयर। जिसका अर्थ है प्रति वर्ष 7.9 लाख रुपये की करमुक्त आमदनी। 10 हेक्टेयर से ज़्यादा ज़मीन रखने वाले पंजाब और हरियाणा के 20,000 सबसे धनी किसानों की जोत का औसत आकार है 12.6 हेक्टेयर, यानी 1.25 लाख रुपये प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 15.75 लाख रुपये की करमुक्त आय। भारत की औसत आय के अनुसार, ये 20,000 सबसे धनी किसान कुल आबादी के 2 प्रतिशत सबसे धनी लोगों में आते हैं। निश्चित तौर पर, मँझोले और ग़रीब किसानों पर कोई भी टैक्स लगाने का विचार ग़लत है, लेकिन क्या इन सबसे धनी 2 लाख किसानों पर समृद्धि कर नहीं लगाया जाना चाहिए? **अब आप से जब कोई कहे कि भारत में कोई धनी किसान नहीं है, तो उसकी टोपी हवा में उछाल दीजिये!**

उपरोक्त आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि **किसान कोई एक वर्ग नहीं हैं और धनी किसानों-कुलकों के जीवन के हालात, उनके वर्ग हित और उनकी राजनीति का सीमान्त , छोटे और निम्न-मँझोले किसानों के जीवन और हितों से कोई लेना-देना नहीं है।** यह वर्ग गाँवों का पूँजीपति वर्ग है और इसमें पूँजीवादी मालिक किसान, पूँजीवादी काश्तकार किसान, सूदख़ोर, व्यापारी और पूँजीवादी ज़मींदार शामिल हैं, जो उद्यमी मुनाफ़े, सूद, लगान और व्यापारिक मुनाफ़े के ज़रिए गाँव के ग़रीबों को लूटते हैं। उद्यमी पूँजीपति, सूदख़ोर, व्यापारी और भूस्वामी तीनों ही ग्रामीण पूँजीपति वर्ग का अंग हैं। अक्सर, एक ही व्यक्ति यह चारों भी हो सकता है या ये चारों अलग-अलग व्यक्ति भी हो सकते हैं। ये मज़दूरों व अर्द्धसर्वहारा वर्ग के श्रम से पैदा होने वाले बेशी मूल्य को आपस में बाँटते हैं। उद्यमी पूँजीपति को उद्यमी मुनाफ़ा मिलता है, सूदख़ोर को ब्याज मिलता है, व्यापारी को व्यापारिक मुनाफ़ा मिलता है और ज़मींदार को पूँजीवादी लगान मिलता है। **यही गाँव का पूँजीपति वर्ग है, गाँवों में पूँजीवादी राज्यसत्ता का सामाजिक खम्भा और आधार है और गाँवों के खेतिहर मज़दूरों, ग़ैर-खेतिहर मज़दूरों, ग़रीब, सीमान्त और निम्न मँझोले किसानों का सबसे बड़ा शोषक और उत्पीड़क है।**

हमारे देश में लाभकारी मूल्य की व्यवस्था है। इसमें सरकार इस ग्रामीण पूँजीपति वर्ग के फ़ायदे के लिए 22 खेती उत्पादों की बेहद ऊँची क़ीमत रखती है। चूँकि इस क़ीमत को निर्धारित करने पर सरकार का एकाधिकार है, इसलिए इसे एकाधिकारी क़ीमत कह सकते हैं। जब भी कोई पूँजीपति किसी उत्पादन की शाखा में अपने एकाधिकार के कारण पूरी अर्थव्यवस्था के औसत मुनाफ़े से अधिक बेशी मुनाफ़ा देने वाली कोई क़ीमत रखता है या सरकार अपनी राजनीतिक शक्ति के आधार पर बेशी मुनाफ़ा देने वाली क़ीमत रखती है, तो उसे एकाधिकारी क़ीमत कहा जाता है। इस एकाधिकारी क़ीमत के कारण जो बेशी मुनाफ़ा प्राप्त होता है, उसे एकाधिकारी लगान कहा जाता है। हमारे देश में सभी पूँजीवादी किसानों को यह बेशी मुनाफ़ा प्राप्त होता है। यदि पूँजीवादी किसान काश्तकार है, तो वह इस बेशी मुनाफ़े से ही एक हिस्सा भूमि लगान के तौर पर पूँजीवादी भूस्वामी को देता है जो कि खेती के क्षेत्र के कुल उत्पाद के कुल मूल्य से निर्धारित होता है। खेती ज़्यादा श्रमसघन होती है इसलिए उसमें पूँजी की प्रति इकाई अधिक बेशी मूल्य होता है, जो कि पूरी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के औसत मुनाफ़े की दर से ऊँची मुनाफ़े की दर देता है। यह बेशी मुनाफ़ा जो कि खेती के क्षेत्र में पैदा होने वाले मूल्य से निर्धारित होता है, वही भूमि लगान में तब्दील होता है और उसे ही पूँजीवादी काश्तकार किसान पूँजीवादी ज़मींदार के हवाले करता है। लेकिन लाभकारी मूल्य से जो बेशी मुनाफ़ा प्राप्त होता है, वह एकाधिकारी क़ीमत से पैदा होने वाला एकाधिकारी लगान होता है। यह कभी निरपेक्ष भूमि लगान से ज़्यादा भी हो सकता है। उस सूरत में निरपेक्ष भूमि लगान देने का पास पूँजीवादी काश्तकार के पास जो बेशी मुनाफ़ा बचता है, वह उसकी जेब में जाता है।

लाभकारी मूल्य की व्यवस्था के कारण खेती की उपज की कीमतें ज़्यादा रहती हैं। इससे केवल गाँव के पूँजीवादी फ़ार्मरों और कुलकों को फ़ायदा होता है, जबकि समाज को नुक़सान। इसमें भी सबसे ज़्यादा नुक़सान आम मेहनतकश आबादी को होता है। इस प्रकार भारत में पूँजीवादी कुलक और फ़ार्मर न केवल उद्यमी मुनाफ़े, व्यापारिक मुनाफ़े, सूद, भूमि लगान के ज़रिए देश के मेहनतकश अवाम को लूट रहे हैं, बल्कि वे लाभकारी मूल्य के ज़रिए मिलने वाले बेशी मुनाफ़े के ज़रिए भी लूट रहे हैं, जो कि एकाधिकारी क़ीमत के ज़रिए मिलने वाला एकाधिकारी लगान है।

जब भी खेती उत्पाद की कीमतें बढ़ती हैं, तो मज़दूर वर्ग के लिए भोजन महँगा होता है। पूँजीपति वर्ग भी चाहता है कि भोजन सस्ता रहे, ताकि मज़दूर की श्रमशक्ति का मूल्य कम से कम रहे। क्योंकि जब मज़दूर को अपने उपभोग की वस्तुएँ सस्ती मिलेंगी, तो उसकी मज़दूरी को भी पूँजीपति घटाता है। जब मज़दूरी पर उसका ख़र्च कम होता है, जबकि श्रम की मात्रा उतनी ही होती है, तो मुनाफ़ा बढ़ता है और मुनाफ़े की दर में वृद्धि होती है। क्यों? मान लीजिए कि मज़दूर 8 घण्टे काम करता है। इसमें से वह एक हिस्सा (मान लें 2 घण्टे) अपने लिए काम करता है। यानी इन 2 घण्टों में वह उतना मूल्य पैदा करता है, जो कि उसकी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर है। यानी, जितने में वह उन वस्तुओं को ख़रीद सकता है, जो उसके जीविकोपार्जन के लिए न्यूनतम रूप से आवश्यक हैं। बाक़ी 6 घण्टे वह पूँजीपति के लिए काम करता है और उस 6 घण्टे में पैदा होने वाला मूल्य, बेशी मूल्य होता है। मान लीजिए कि मज़दूर को अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो वस्तुएँ चाहिए, वे सस्ती हो जाती हैं, तो फिर श्रमशक्ति का मूल्य भी कम हो जायेगा। मान लीजिए कि मज़दूर के उपभोग की वस्तुओं की क़ीमत 50 प्रतिशत घट जाती है, तो मज़दूर 1.5 घण्टे में ही अपने लिए आवश्यक श्रम कर लेगा और 6.5 घण्टे वह पूँजीपति को बेशी श्रम मुफ़्त में देता है। काम के घण्टे 8 ही रहे, लेकिन अब मज़दूर के शोषण की दर बढ़ गयी, बेशी मूल्य की दर बढ़ गयी और पूँजीपति का मुनाफ़ा बढ़ गया। मुनाफ़े की दर फिर भी गिर सकती है, यदि पूँजीपति द्वारा मशीनों व कच्चे माल पर लगायी गयी पूँजी मज़दूर पर लगायी गयी पूँजी के मुक़ाबले तेज़ गति से बढ़ती है। लेकिन वह अलग मसला है। जो भी हो, मुनाफ़ा बढ़ता है और यदि अन्य चीज़ें समान रहें, तो मुनाफ़े की दर भी बढ़ती है। यानी, पूँजीपति वर्ग हमेशा यह चाहता है कि मज़दूर की श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए ज़रूरी वस्तुएँ, विशेष तौर पर भोजन सस्ता हो। यह खेतिहर पूँजीपति वर्ग, विशेष तौर पर, पूँजीवादी भूस्वामी और बाक़ी पूँजीपति वर्ग में अन्तरविरोध का एक मसला भी होता है। खेतिहर पूँजीपति वर्ग चाहता है कि उसे उसके उत्पाद की ज़्यादा ऊँची क़ीमत मिले। लेकिन यह मज़दूर वर्ग के लिए भी बुरा होता है और बाक़ी पूँजीपति वर्ग के लिए भी।

यदि भोजन महँगा होता है, तो पूँजीपति वर्ग पर मज़दूरी बढ़ाने का दबाव पैदा होता है। पूँजीपति वर्ग एक सीमा तक ही मज़दूरी बढ़ने के दबाव को रोक सकता है। यदि भोजन महँगा होता जाता है और मज़दूरी नहीं बढ़ती, तो मज़दूर वर्ग की वास्तविक मज़दूरी घटती है। वास्तविक मज़दूरी उपभोग के सामानों का वह झोला है, जो मज़दूर अपनी मज़दूरी से ख़रीद सकता है। यदि ये सामान महँगे होते हैं, लेकिन मज़दूरी नहीं बढ़ती, तो यह झोला छोटा होता जायेगा, यानी वास्तविक मज़दूरी घटती जायेगी। लेकिन वास्तविक मज़दूरी को लम्बे समय तक इतना नहीं घटाया जा सकता है कि मज़दूर अपनी श्रमशक्ति का पुनरुत्पादन ही न कर सके या उसे स्वस्थ रूप में पुनरुत्पादित ही न कर सके, क्योंकि पूँजीपति वर्ग स्वयं श्रम करके मूल्य का उत्पादन नहीं करता है, बल्कि मज़दूर वर्ग के श्रम से ही मूल्य पैदा होता है। साथ ही, जब भी मज़दूर के उपभोग की वस्तुएँ महँगी होती हैं, तो मज़दूर अपनी मज़दूरी को बढ़ाने के लिए संघर्ष भी करते हैं। इसलिए इन वस्तुओं और विशेष तौर पर भोजन के महँगे होने का मुनाफ़े की दर पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है और पूँजीपति वर्ग भी नहीं चाहता है कि भोजन की कीमतें बढ़ें।

दूसरी बात, जिस दौर में पूँजीपति वर्ग भोजन व अन्य उपभोग की वस्तुओं की क़ीमतों के बढ़ने पर भी मज़दूरी को पुराने स्तर पर रखने में कामयाब होता है, उस दौर में भूमि लगान या इजारेदार लगान के कारण उसकी वास्तविक मज़दूरी में कटौती होती है। जिस दौर में ये वस्तुएँ महँगी होने पर पूँजीपति वर्ग को मज़दूरी बढ़ानी पड़ती है, उस दौर में भूमि लगान या इजारेदार लगान के कारण पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े में कटौती होती है। कई बार मज़दूर वर्ग की मज़दूरी और पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े दोनों में ही कटौती होती है।

लाभकारी मूल्य की वजह से भारत में भोजन की कीमतें बढ़ती हैं। पूँजीपति वर्ग इसलिए लाभकारी मूल्य को ख़त्म नहीं करना चाहता कि मज़दूर वर्ग की वास्तविक मज़दूरी बढ़े, बल्कि वह इसलिए लाभकारी मूल्य को ख़त्म करना चाहता है ताकि उसका मुनाफ़ा बढ़े, क्योंकि तब वह मज़दूर की मज़दूरी को कम कर सकता है। मज़दूर वर्ग को उस सूरत में अपनी मज़दूरी को पुराने स्तर पर बनाये रखने के लिए लड़ने की तैयारी करनी चाहिए ताकि लाभकारी मूल्य के ख़त्म होने की सूरत में वह अपनी वास्तविक मज़दूरी को बढ़ा सके। लेकिन किसी भी सूरत में वह खेतिहर पूँजीपति वर्ग, सूदखोरों, आढ़तियों, व्यापारियों और बिचौलियों की बेशी मुनाफ़ाख़ोरी के लिए बनी लाभकारी मूल्य की व्यवस्था का समर्थन नहीं कर सकता है। लाभकारी मूल्य मज़दूर-विरोधी है और समाज-विरोधी है।

लेकिन क्या लाभकारी मूल्य से ग़रीब किसान को लाभ नहीं होगा? नहीं होगा। क्योंकि ग़रीब किसान साल भर में जितना अनाज बेचता है, उससे ज़्यादा ख़रीदता है। दूसरी बात, ग़रीब किसान को लाभकारी मूल्य मिल ही नहीं पाता है क्योंकि सरकारी मण्डियों तक उसकी पहुँच नहीं है। इसलिए वह लाभकारी मूल्य से 30 प्रतिशत तक कम क़ीमतों पर अपने अनाज को धनी किसानों, व्यापारियों और आढ़तियों को बेचता है, जिससे कि उन्हें वाणिज्यिक मुनाफ़ा हासिल होता है। साथ ही, ग़रीब किसानों की उपज की क़ीमतों में से ये धनी किसान, आढ़ती और व्यापारी अपने द्वारा दिये गये उधार के बेहद ऊँचे ब्याज भी काट लेते हैं। इस प्रकार वे सूद के ज़रिए भी ग़रीब किसान को लूटते हैं। इसके अलावा, यही ग़रीब किसान मज़दूर के रूप में अक्सर धनी किसान वर्ग के खेतों में काम भी करता है और बेशी मूल्य पैदा कर धनी किसानों को उद्यमी मुनाफ़ा भी देता है। और जिन मामलों में ग़रीब किसान थोड़ी-बहुत ज़मीन किराये पर लेकर खेती करता है, उनमें वह लगान के रूप में अपना लगभग पूरा ही अतिरिक्त उत्पाद (उसकी बुनियादी आवश्यकता के ऊपर) पूँजीवादी भूस्वामी को सौंप देता है। इस प्रकार लगान के ज़रिए भी पूँजीवादी ज़मींदार द्वारा ग़रीब काश्तकार किसान की लूट-खसोट होती है। हालाँकि इस मामले में लगान का चरित्र अभी पूरी तरह से पूँजीवादी नहीं हुआ है क्योंकि पूँजीवादी लगान वह होता है जो कि उजरती श्रम के शोषण से पैदा होने वाले बेशी मूल्य का वह हिस्सा होता है, जोकि उजरती

(पेज 12 पर जारी)

धनी किसान-कुलक आन्दोलन का हालिया घटनाक्रम और “किसान-मज़दूर एकता” के नारे की असलियत

– शिवानी

धनी किसान आन्दोलन को शुरू हुए छह महीने से ज़्यादा का वक़्त बीत चुका है। हाल ही में आन्दोलन के छह महीने पूरे होने पर 26 मई को किसानों द्वारा ‘काला दिवस’ मनाया गया था। लेकिन इस मौक़े पर हुए तमाम विरोध प्रदर्शनों में वैसी तादाद और तेवर नहीं दिखे, जो धनी किसान आन्दोलन के शुरुआती दौर में मौजूद थे। दिल्ली की सरहदों पर जारी इस आन्दोलन की जुटानों में पहले के मुक़ाबले किसानों की शिरक़त भी काफ़ी घटी है। आन्दोलन का नेतृत्व संख्यात्मक ताक़त में आयी इस कमी का कारण कभी धान ख़रीद के सीज़न को गिना रहा था तो कभी कोरोना महामारी को, जबकि यह आंशिक तौर पर ही सच है। इसके साथ ही पहले की ही तरह कुलक आन्दोलन पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ इलाक़ों के अलावा कहीं और सक्रिय नहीं है। ऐसा नहीं है कि ‘संयुक्त किसान मोर्चा’, जिसके नेतृत्व में आन्दोलन चल रहा है, ने आन्दोलन को देश के अलग हिस्सों में फैलाने की कोशिश नहीं की, लेकिन एमएसपी यानी कि लाभकारी मूल्य और एपीएमसी मण्डियों की मज़बूत व्यवस्था की देश के अन्य हिस्सों में अपेक्षाकृत अनुपस्थिति के कारण धनी किसान आन्दोलन को पंजाब-हरियाणा के बाहर पैर पसारने की कोई भौतिक ज़मीन ही नहीं मिली।

तीन कृषि क़ानूनों के ख़िलाफ़ शुरू हुए इस आन्दोलन ने मज़दूर आन्दोलन के दायरे में भी कृषि प्रश्न और किसान प्रश्न पर बहस की शुरुआत की और कई अवस्थितियों पर रोशनी डाली। आज मौजूदा किसान आन्दोलन की अपनी आन्तरिक गति से यह साफ़ हो चुका है कि **यह आन्दोलन मूलत: और मुख्यत: लाभकारी मूल्य की व्यवस्था को बरक़रार रखने और बढ़ाने की लड़ाई है और इसलिए यह खेतिहर मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश किसानों, यानी कि ग़रीब, छोटे और निम्न-मँझोले किसानों का आन्दोलन नहीं है**, भले ही इन वर्गों से भी मौजूदा आन्दोलन में भागीदारी हो रही है। जारी आन्दोलन के साथ ही आम तौर पर कृषि प्रश्न, किसान प्रश्न, लाभकारी मूल्य की व्यवस्था, बड़ी इजारेदार पूँजी द्वारा थोपी जाने वाली इजारेदारी क़ीमतों के निर्धारण का प्रश्न, बड़ी इजारेदारियों समेत, समूचे पूँजीपति वर्ग द्वारा मज़दूरी उत्पादों, जिसमें कि खाद्यान्न भी शामिल हैं, से जुड़े सेक्टरों में इजारेदार क़ीमतों को थोपने से बचना क्योंकि यह उनके सामूहिक वर्ग हितों को नुक़सान पहुँचाता है आदि, जैसे अहम मसलों पर मज़दूर आन्दोलन में भी कई बहसें जारी हैं।

जैसा कि हमारे द्वारा ‘बिगुल’ के पन्नों पर पहले भी लिखा जाता रहा है कि हमारा स्पष्ट तौर पर मानना है कि पहले दो कृषि क़ानूनों, यानी, फ़ार्मर्स प्रोड्यूस ट्रेड एण्ड कॉमर्स (प्रमोशन एण्ड फैसिलिटेशन) एक्ट, 2020 और फ़ार्मर्स (एम्पावरमेण्ट एण्ड प्रोटेक्शन) एग्रीमेण्ट ऑन प्राइस अश्योरेन्स एण्ड फ़ार्म सर्विसेज़ एक्ट, 2020 से सर्वहारा वर्ग, ग़रीब, छोटे और निम्न मँझोले किसान और खेतिहर मज़दूर वर्ग की ज़िन्दगी पर सिर्फ़ इतना असर पड़ेगा कि **पहले मुख्य रूप से गाँवों में पूँजीवादी भूस्वामियों व पूँजीवादी फ़ार्मरों यानी कि ग्रामीण पूँजीपति वर्ग द्वारा उनका शोषण किया जाता था, और अब पहले दो क़ानूनों के लागू होने के बाद उस शोषण में बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग यानी कॉरपोरेट पूँजीपति वर्ग की बढ़ती हिस्सेदारी का रास्ता साफ़ होगा, यानी अब ये दोनों वर्ग मिलकर ग्रामीण सर्वहारा और ग़रीब किसानों को लूटेंगे या फिर इस भूमिका में प्रमुख तौर पर इजारेदार पूँजीपति वर्ग आ जायेगा।** धनी किसानों, कुलकों, सूदख़ोरों (जो अक्सर स्वयं धनी किसान ही होते हैं), आढ़तियों-बिचौलियों (जो अक्सर स्वयं धनी किसान ही होते हैं) द्वारा पहले भी खेतिहर मज़दूरों, जिनमें की बड़ी तादाद में दलित मज़दूर भी शामिल हैं, की लूट और शोषण तथा ग़रीब व निम्न मँझोले किसानों की लूट और उजड़ना जारी था।

बड़ी इजारेदार पूँजी के खेती के क्षेत्र में प्रवेश से पहले कृषि में खेतिहर पूँजीपति वर्ग का दबदबा था और उजड़ने वाले अधिकांश ग़रीब, छोटे व निम्न मँझोले किसानों के उजड़ने का सबसे बड़ा कारण सूद, लगान और मुनाफ़े के ज़रिये खेतिहर पूँजीपति वर्ग द्वारा उनका शोषण ही था। कॉरपोरेट पूँजी यानी कि बड़ी इजारेदार पूँजी के प्रवेश के बाद भी उनका शोषण पहले की तरह ही जारी रहेगा, हालाँकि उनके प्रमुख शोषकों की स्थिति में ज़्यादा से ज़्यादा बड़ा इजारेदार पूँजीपति वर्ग आता जायेगा। धनी किसान-कुलक वर्ग, सूदख़ोर, आढ़तिये-बिचौलिये खेती के क्षेत्र में बड़ी इजारेदार पूँजी के प्रवेश के ख़िलाफ़ हैं और उन्हें मिलने वाले राजकीय संरक्षण यानी कि लाभकारी मूल्य की व्यवस्था, कृषि में अपने आर्थिक वर्चस्व और प्रभुत्व को बनाये रखना चाहते हैं। **मौजूदा किसान आन्दोलन मुनाफ़े में अपनी हिस्सेदारी को सुनिश्चित करने के लिए धनी किसानों-कुलकों यानी कि खेतिहर पूँजीपति वर्ग की लड़ाई है और इसलिए वे लाभकारी मूल्य की व्यवस्था को क़ानूनी जामा पहनाने की माँग कर रहे हैं।**

इन तीन कृषि क़ानूनों में सिर्फ़ तीसरा क़ानून, यानी कि आवश्यक वस्तुओं के क़ानून में किये गए परिवर्तन, सीधे तौर पर मज़दूर-मेहनतकशों के हितों के ख़िलाफ़ जाते हैं क्योंकि यह जमाख़ोरी और कालाबाज़ारी को बढ़ाने की छूट देते हैं जिससे बुनियादी वस्तुओं की क़ीमतों में कृत्रिम रूप से **बढ़ोत्तरी करने की व्यापारिक पूँजी और तमाम प्रकार के बिचौलियों की क्षमता** में इज़ाफ़ा होगा। **इस तीसरे क़ानून के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग, ग़रीब व निम्न-मँझोले किसानों और समूची आम मेहनतकश आबादी के राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र आन्दोलन को संगठित करने की आवश्यकता है।**

हमने इस बात को भी बार-बार रेखांकित किया है कि ग़रीब व मँझोले किसान अपनी बर्बादी के लिए ज़िम्मेदार बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग का विरोध अपेक्षाकृत छोटी पूँजी की ज़मीन से नहीं करेंगे बल्कि अपनी स्वतन्त्र वर्गीय राजनीतिक अवस्थिति से करेंगे। *लाभकारी मूल्य की व्यवस्था को बनाये रखने का मसला और कुछ नहीं बस ग्रामीण पूँजीपति यानी धनी किसान-कुलक वर्ग और बड़े इजारेदार कॉरपोरेट पूँजीपति वर्ग के बीच का विवाद है, उनके बीच का अन्तर्विरोध है, जो कई बार काफ़ी तीखा भी हो सकता है लेकिन फिर भी यह शत्रुतापूर्ण अन्तर्विरोध नहीं है जैसा कि सर्वहारा वर्ग और समूचे पूँजीपति वर्ग के बीच का अन्तर्विरोध है। इसमें खेतिहर मज़दूरों, ग़रीब व निम्न-मँझोले किसानों को धनी किसान-कुलकों के वर्ग या बड़ी इजारेदार पूँजी यानी कि कॉरपोरेट पूँजी का साथ देने, किसी एक का पक्ष चुनने की कोई आवश्यकता नहीं है।* **ऐसा करना सर्वहारा वर्ग और ग़रीब व छोटे किसानों के वर्ग हितों के विपरीत है, उनके लिए नुक़सानदेह है और ठीक इसी कारण से वर्ग पुछल्लावाद और वर्ग आत्मसमर्पणवाद है।**

लाभकारी मूल्य राज्य द्वारा समूचे समाज से वसूला जाने वाला *ट्रिब्यूट* है!

दरअसल लाभकारी मूल्य खेतिहर पूँजीपति वर्ग द्वारा समाज से वसूला जा रहा एक *ट्रिब्यूट* है जिसकी गारण्टी अब तक पूँजीवादी राज्यसत्ता धनी किसानों-कुलकों के लिए सुनिश्चित करती रही है। **लाभकारी मूल्य एक प्रकार का अतिरिक्त मुनाफ़ा ही है, जो कि धनी किसानों-कुलकों के वर्ग के हितों के लिए राज्य द्वारा क़ीमतों के एक ऐसे ऊँचे स्तर पर निर्धारण द्वारा पैदा होता है जो कि इस वर्ग को औसत मुनाफ़े से ऊपर बेशी या अतिरिक्त मुनाफ़ा सुनिश्चित करता है। लाभकारी मूल्य और कुछ नहीं बल्कि पूँजीवादी भूस्वामियों, पूँजीवादी फ़ार्मरों व पूँजीवादी काश्तकार किसानों द्वारा समूचे समाज और आम मेहनतकश आबादी पर थोपा गया एक बेशी मुनाफ़ा या एक क़िस्म का इजारेदारी लगान है, जो कि सरकार द्वारा क़ीमतों के इजारेदार निर्धारण के ज़रिये पैदा होता है। यह समाज से वसूला जाने वाला एक प्रकार का *ट्रिब्यूट* है और ठीक इसलिए जनविरोधी है।**

कृषि उत्पादों, जिसमें कि खाद्यान्न भी शामिल हैं, की क़ीमतें बढ़ाने की कोई भी माँग समूचे समाज के विरुद्ध जाती है और पूँजीवादी भूस्वामी वर्ग की निरपेक्ष लगान या फिर इजारेदार लगान को बढ़ाने की माँग के समान है; ठीक इन्ही अर्थों में, लाभकारी मूल्य, जो कि पूँजीवादी राज्यसत्ता द्वारा धनी किसानों, पूँजीवादी फ़ार्मरों और कुलकों के पक्ष में समाज से वसूला जाना वाला *ट्रिब्यूट* है, एक इजारेदारी क़ीमत और इजारेदारी लगान है, जो कि खाद्य उत्पादों की क़ीमतों को बढ़ाता है और इसलिए मज़दूर वर्ग समेत आम मेहनतकश आबादी के ख़िलाफ़ जाता है।

एक दौर में भारतीय पूँजीपति वर्ग को राजनीतिक और आर्थिक कारणों से कृषि में पूँजीवादी विकास के लिए पूँजीवादी धनी किसानों-कुलकों के एक पूरे वर्ग को खड़ा करने की आवश्यकता थी। इसी वजह से 1960 के दशक में तथाकथित ‘हरित क्रान्ति’ की शुरुआत की गयी और राजकीय संरक्षण, जिसमें कि लाभकारी मूल्य की व्यवस्था प्रमुख थी, के ज़रिये इस पूरे वर्ग को खड़ा किया गया। आज भारतीय पूँजीवाद जिस दौर में है उसे खेतिहर पूँजीपति वर्ग को इस प्रकार का संरक्षण देने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह बड़ी इजारेदार वित्तीय-औद्योगिक पूँजी समेत समूचे पूँजीपति वर्ग के लिए नुक़सानदेह है। क्यों? क्योंकि खाद्यान्न और मज़दूर उत्पादों की ऊँची क़ीमतें मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा करती हैं और नतीजतन कुल सृजित मूल्य में मुनाफ़े के हिस्से को कम कर सकती हैं, जोकि समूचे पूँजीपति वर्ग के सामूहिक वर्ग हितों के ख़िलाफ़ जाता है।

इसलिए आज बड़ी इजारेदार पूँजी और पूँजीवादी राज्यसत्ता, जो समूचे पूँजीपति वर्ग के दीर्घकालिक सामूहिक वर्ग हितों की नुमाइन्दगी करती है, लाभकारी मूल्य की व्यवस्था को ख़त्म करना चाहते हैं।

धनी किसानों-कुलकों के पक्ष में सरकार द्वारा एमएसपी के रूप में वसूला जाने वाला यह *ट्रिब्यूट* किसी भी सूरत में आम मेहनतकश जनता के पक्ष में नहीं है, बल्कि उसके ख़िलाफ़ जाता है। यह दीगर बात है कि इसके ख़त्म होने के बाद भी मेहनतकश जनता को इसका लाभ तभी मिलेगा जबकि वह बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग से संघर्ष कर अपनी औसत मज़दूरी को उसी स्तर पर बरक़रार रखे। नहीं तो इस *ट्रिब्यूट* के ख़त्म होने का पूरा लाभ केवल बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग को ही मिलेगा। लेकिन इसका ख़त्म होना किसी भी रूप में मज़दूर वर्ग, ग़रीब व निम्न-मंझोले किसानों और शहरी निम्न मध्यम व मध्यम वर्ग को नुक़सान नहीं पहुँचाने वाला है। वजह, जैसा कि हमने ऊपर बताया, यही है कि यह एक प्रकार का अतिरिक्त मुनाफ़ा/ इजारेदारी क़ीमत/ इजारेदारी लगान है जो पूर्णत: धनी किसानों-कुलकों के वर्ग को व्यापक आम मेहनतकश आबादी की क़ीमत पर लाभ पहुँचाता है।

यही कारण है कि कोई भी सर्वहारा वर्गीय क्रान्तिकारी ताक़त लाभकारी मूल्य से मिलने वाले इस बेशी मुनाफ़े का समर्थन नहीं करेगी। इस माँग का समर्थन करना अपने आप में पूँजीवादी कुलकों-फ़ार्मरों के बेशी मुनाफ़े व लगानख़ोरी का समर्थन करना है। मज़दूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली कोई भी शक्ति रणनीतिक या रणकौशलात्मक तौर पर भी लाभकारी मूल्य का समर्थन नहीं कर सकती है। यह वास्तव में सर्वहारा वर्गीय राजनीति और विचारधारा को तिलांजलि देने के समान होगा, वर्ग आत्मसमर्पणवाद, वर्ग सहयोगवाद और वर्ग पुछल्लावाद होगा और सर्वहारा वर्ग के सामान्य राजनीतिक आन्दोलन को नुक़सान पहुँचाना होगा। इसलिए आज मज़दूर वर्ग को भी लाभकारी मूल्य की व्यवस्था पर साफ़-नज़र होने की ज़रूरत है।

“किसान-मज़दूर एकता” के नारे की हक़ीक़त

हम पहले भी ‘बिगुल’ के पृष्ठों पर बताते रहे हैं कि किसान कोई एक सजातीय या एकाश्मी वर्ग नहीं होता है। सबसे पहले सवाल यह उठता है कि हम किस किसान की बात कर रहे हैं। क्या हम उन 86 प्रतिशत ग़रीब व परिधिगत किसानों की बात कर रहे हैं जो कि सवा हेक्टेयर से भी कम ज़मीन के मालिक हैं और मुख्य रूप से अपने जीविकोपार्जन के लिए उजरती श्रम पर निर्भर हैं यानी कि अर्द्ध-सर्वहारा हैं, या फिर हम उन किसानों की बात कर रहे हैं जो कि 4 हेक्टेयर से अधिक ज़मीन के मालिक हैं और मुख्यत: वही लाभकारी मूल्य का फ़ायदा पाते हैं और गाँवों में राजनीतिक व आर्थिक तौर पर प्रभुत्वशाली वर्ग हैं। इसके अलावा गाँवों में खेतिहर मज़दूरों की बड़ी आबादी रहती है जिनका बहुलांश दलित व प्रवासी मज़दूर हैं। **आज जब लाभकारी मूल्य की व्यवस्था पर ख़तरे के बादल मंडराने लगे हैं तो गाँव के इस धनी किसान व कुलक वर्ग को अचानक “मज़दूर-किसान एकता” की याद आयी है! यह धनी किसान व कुलक वर्ग खेतिहर मज़दूरों और ग़रीब किसानों के साथ क्या बर्ताव करता रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है।**

मौजूदा धनी किसान आन्दोलन के जारी रहते हुए इस वक़्त भी पंजाब में धनी किसानों-कुलकों और उनकी नुमाइन्दगी करने वाली तमाम यूनियनों द्वारा अपनी पंचायतों में ग़ैर-जनवादी तरीक़े से मत डालकर खेत मज़दूरी पर एकतरफ़ा फैसले लिए जा रहे हैं और मज़दूरी पर कैप लगाए जा रहे हैं। खेत मज़दूरों के पक्ष से इसके बारे में राय तक नहीं ली जा रही है। खेतिहर मज़दूर आबादी जिनमें मुख्य तौर पर स्त्री मज़दूर, दलित मज़दूर और प्रवासी मज़दूर शामिल हैं, **एक ओर गाँवों में धनी** किसानों, सूदख़ोरों, **आढ़तियों पर अपनी निर्भरता के कारण और दूसरी ओर अपनी स्वतन्त्र वर्ग चेतना व वर्ग संगठन के अभाव में** अपने अधिकारों

(पेज 10 पर जारी)

धनी किसान-कुलक आन्दोलन का हालिया घटनाक्रम और "किसान-मज़दूर एकता" के नारे की असलियत

(पेज 9 से आगे)

की दृढ़तापूर्वक हिफ़ाज़त भी नहीं कर पाती है।

पिछले वर्ष भी लॉकडाउन के दौरान प्रवासी मज़दूरों की सस्ती श्रमशक्ति की आपूर्ति में कमी आने के कारण इन्हीं धनी किसानों और कुलकों ने पंजाब और हरियाणा के तमाम गाँवों में अपनी पंचायतों के ज़रिये मज़दूरों की मज़दूरी पर एक सीलिंग लगा दी थी और मज़दूरी के रेट तय किये थे और ऐलान कर दिया था कि यदि किसी किसान ने इस मज़दूरी से ज़्यादा मज़दूरी दी तो उनका बहिष्कार किया जायेगा और अगर गाँव का कोई खेतिहर मज़दूर बेहतर मज़दूरी की तलाश में गाँव से कहीं बाहर जाकर काम करता है, तो उसका भी सामाजिक बहिष्कार किया जायेगा। जैसा कि हमने पहले भी इंगित किया था कि पंजाब और हरियाणा में स्थानीय खेतिहर मज़दूरों की भारी बहुसंख्या दलित है और जाट व जट्ट धनी किसानों व कुलकों के हाथों आर्थिक शोषण के साथ-साथ सामाजिक उत्पीड़न के बर्बर रूपों को भी झेलती है। **लेकिन अब जब इन धनी किसानों व कुलकों पर उससे से भी बड़ी पूँजी यानी कॉरपोरेट पूँजी का क़हर बरपा हो रहा है, तो यह शोषक-उत्पीड़क वर्ग अचानक "मज़दूर-किसान एकता" का हिमायती हो गया है।**

पंजाब में खेत मज़दूरी पर ये फ़ैसले तब लिये जा रहे हैं, जब सिंघु और टीकरी बॉर्डर से "किसान-मज़दूर एकता" के नारे अभी तक लगाये जा रहे हैं और बार-बार इस "एकता" को क़ायम करने की दुहाई दी जा रही है। मज़दूर वर्ग को समझाया जा रहा है कि अपने वर्ग हित भुलाकर साझा दुश्मन, यानी कि, बड़ी इजारेदार पूँजी के ख़िलाफ़ संघर्ष में वह अपने वर्तमान शोषकों, यानी कि, धनी किसानों-कुलकों के वर्ग का साथ दे, क्योंकि इस वक़्त छोटी पूँजी बड़ी पूँजी के आगमन से भयाक्रान्त है! **मज़दूर आन्दोलन में सक्रिय कुछ "यथार्थवादी" चतुर सुजान कुलकों-धनी किसानों द्वारा खेतिहर मज़दूरों के शोषण को पहले ही अतीत की बात क़रार दे चुके हैं!** लेकिन इस "एकता" की असलियत तो खेत मज़दूरी पर कुलकों-धनी किसानों, यानी कि ग्रामीण पूँजीपति वर्ग, के इन फ़ैसलों द्वारा लगायी गयी सीलिंग से ही स्पष्ट हो जाती है।

पंजाब के खेतिहर मज़दूरों की नुमाइन्दगी का दम भरने वाली कुछ यूनियनें, जिसमें लिबरेशन से जुड़ी यूनियन प्रमुख है, खेतिहर मज़दूरों को किसान आन्दोलन में भीड़ बढ़ाने के लिए दिल्ली भी ले गयी थीं। जहाँ धनी किसानों ने अपनी ट्रॉलियों तक में मज़दूरों को जगह नहीं दी थी और उन्हें रात आसमान के नीचे बितानी पड़ी थी। काफ़ी फ़ज़ीहत होने के बाद पंजाब किसान यूनियन के नेता रुलदू सिंह को वापस जाकर माफ़ी भी माँगनी पड़ी थी। आज यह मज़दूर वर्ग से दग़ाबाज़ी करने वाली यूनियनें भी मज़दूरी पर सीलिंग के इन फ़ैसलों पर घड़ियाली आंसू बहा रही हैं। **यह भी याद रहे कि खेत मज़दूरी पर यह फ़ैसले उस वक़्त भी आये हैं जब मोदी सरकार द्वारा चावल, दलहन और तेल बीजों पर फिर से एमएसपी बढ़ा दिया गया है। इसकी घोषणा सरकार ने हाल ही में की है।**

क्या कारण है कि जो "मार्क्सवादी" एमएसपी की व्यव्यथा को बरक़रार रखने और इसे बढ़ाने के कुलकों के कोरस में सुर मिला रहे हैं, वे सभी पंजाब में मज़दूरी पर इन फ़ैसलों पर चुप है? क्या कारण है कि ऐसे "क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट" जिनमें तमाम किस्म के "यथार्थवादी", क़ौमवादी और नरोदवादी शामिल हैं, वे कभी खेतिहर मज़दूरों के लिए सरकारी संरक्षण,यानी कि, न्यूनतम मज़दूरी की माँग नहीं उठाते हैं? क्या कारण है कि वे खाद्यानों की क़ीमतों में बढ़ोतरी के लिए पूरे पूँजीपति वर्ग और पूँजीवाद को कटघरे में न खड़ा करके, उसके सिर्फ़ एक धड़े, इजारेदार पूँजी को दोषी ठहराते हैं, जबकि स्वयं कुलक-धनी किसान वर्ग भी इसके लिए ज़िम्मेदार हैं, लेकिन उसे बाइज़्ज़त बरी कर देते हैं?

कारण है उनकी कुलकपरस्ती जो उनको मज़दूर वर्ग के हितों का सौदागर बनाती है, इन तमाम क़िस्म के कुलकपरस्तों को सर्वहारा वर्ग से विश्वासघात के लिए प्रेरित करती है और उसे अपने ही शोषकों के एक धड़े का पुछल्ला बनने की नसीहत देती है।

धनी किसान आन्दोलन के फ़ासीवाद-विरोधी चरित्र के दावे की असलियत

भारत में फ़ासीवाद के उभार से हताश-निराश लिबरल जमात व प्रगतिशीत ताक़तें दावा कर रही हैं कि मौजूदा धनी किसान आन्दोलन फ़ासीवाद विरोधी आन्दोलन है। हालाँकि इस आन्दोलन का नेतृत्व करने वाली ताक़तों का ऐसा कोई दावा नहीं है! ऐसे तमाम लोगों ने धनी किसान आन्दोलन से फ़ासीवाद को हराने की काफ़ी उम्मीदें पाली हुई हैं। बंगाल चुनावों में भाजपा की हार को कुछ लोग फ़ासीवाद की निर्णायक हार क़रार दे रहे हैं और किसान आन्दोलन की इसमें भूमिका को बढ़ा-चढ़कर पेश कर रहे हैं। जबकि सच्चाई यह है कि बंगाल में फ़ासीवादी भाजपा की हार के कारण अलहदा हैं और उनका किसान आन्दोलन से दूर-दूर तक कोई लेना-देना नहीं है। अगर किसान आन्दोलन ही भाजपा की हार का प्रमुख कारण था तो पश्चिम बंगाल में तीन कृषि क़ानूनों के ख़िलाफ़ स्थानीय किसान आन्दोलन खड़ा क्यों नहीं हो पाया? क्यों पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुलक नेताओं को ममता बैनर्जी के समर्थन में प्रचार करने जाना पड़ा? वजह यह है कि बंगाल में एमएसपी और एपीएमसी मण्डियों की व्यवस्था पहले से ही मौजूद नहीं है और इसलिए ही वहाँ कोई आन्दोलन नहीं है। **कुलक किसान आन्दोलन पर ताली बजाने वाली इसी लिबरल वायरस से ग्रस्त जमात कुछ दिनों पहले तक ममता बनर्जी के नाम के क़सीदे पढ़ रही थी। आज इन्हें राकेश टिकैत में फ़ासीवाद-विरोधी नायक दिख रहा है! ऐसा अति आशावादी नज़रिया गहरे निराशावाद, पराजयबोध और वर्ग राजनीति के बोध और अन्तर्दृष्टि के अभाव के कारण ही पैदा होता है।**

इसके अलावा, धनी किसानों-कुलकों का यह वर्ग ऐतिहासिक तौर पर भी कितना फ़ासीवाद-विरोधी हो सकता है, यह पिछले लम्बे समय में स्पष्ट भी हो चुका है। जिन टिकैत बन्धुओं में प्रगतिशील ताक़तें फ़ासीवाद-विरोधी सम्भावनाएँ टटोल रही हैं, उनकी मुज़फ्फरनगर दंगों में आपराधिक भूमिका कौन नहीं जानता है। हालाँकि स्मृतिलोप की शिकार ऐसी ताक़तें इन्हें अब अतीत की बात मानती हैं! 1990 के बाद से ही क्लासिकीय कुलक राजनीति के ह्रास के साथ इस रिक्तता को संघ परिवार व भाजपा की फ़ासीवादी राजनीति व अन्य प्रकार की प्रतिक्रियावादी दक्षिणपन्थी व धार्मिक कट्टरपन्थी राजनीति ने तेज़ी से भरा है। विशेष तौर पर, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा में। यह वर्ग अपनी प्रकृति से ही फ़ासीवाद व प्रतिक्रियावाद का सामाजिक आधार बनने की सम्भावना-सम्पन्नता रखता हैं। तात्कालिक तौर पर, किसी आर्थिक मुद्दे या किसी विशिष्ट माँग पर, जैसा कि लाभकारी मूल्य को बचाने वाले मौजूदा आन्दोलन ने स्पष्ट किया है, इसका फ़ासीवादी सरकार के साथ अन्तर्विरोध हो सकता है, जो कि काफ़ी तीखा भी हो सकता है। **लेकिन यह वर्ग मुख्यत: और मूलत: किसी फ़ासीवाद-विरोधी सम्भावना से रिक्त है और मौक़ा पड़ने पर फ़ासीवादियों के साथ या अन्य प्रकार की धार्मिक कट्टरपन्थी या दक्षिणपन्थी प्रतिक्रियावादी राजनीति के साथ खड़ा हो सकता है और होता भी रहा है।**

इसलिए जिन लोगों को यह लगता है कि मौजूदा किसान आन्दोलन का चरित्र फ़ासीवाद विरोधी है वे मुग़ालते में जी रहे हैं और पराजयबोध उनकी तर्क बुद्धि पर हावी हो गया है। हाल में हरियाणा के मेवात ज़िले में एक मुस्लिम युवक की 'मॉब लिंचिंग' के आरोपियों के पक्ष में महापंचायतों का आयोजन किया गया। यह महापंचायतें गाँवों में ऐन उस वक़्त हो रही हैं जब तथाकथित फ़ासीवाद-विरोधी किसान आन्दोलन जारी है। इन तमाम उच्च जातियों की महापंचायतों और खाप पंचायतों के पीछे सक्रिय ताक़तें असल में ख़ुद ग्रामीण शासक वर्ग से आते हैं। ये किसी विशेष मौक़े पर अपनी संकीर्ण आर्थिक व वर्ग माँगों के चलते फ़ासीवादी सरकार से टकराव की स्थिति में हो सकते हैं लेकिन यह टकराव की स्थिति ही इनके आर्थिक हितों पर चोट के कारण पैदा होती है।

मौजूदा धनी किसान आन्दोलन के दौरान भी पंजाब और हरियाणा के तमाम इलाक़ों में भाजपा और जजपा के नेताओं को किसानों का रोष झेलना पड़ा। फतेहाबाद ज़िले के टोहाना विधान सभा क्षेत्र में जननायक जनता पार्टी के विधायक देवेन्दर बबली के ख़िलाफ़ किसानों का विरोध प्रदर्शन इसका एक उदाहरण है, हालाँकि बबली कृषि क़ानूनों के मसले पर अपनी ही सरकार की आलोचना करता रहा था और उसने इस्तीफ़ा देने तक की धमकी दी थी। जहाँ तक पंजाब में भाजपा की अलोकप्रियता का प्रश्न है तो अगर कुछ शहरी क्षेत्रों को छोड़ दिया जाए तो भाजपा पारम्परिक तौर पर भी कभी वहाँ मज़बूत स्थिति में थी ही नहीं। इसके अलावा धार्मिक कट्टरपन्थी अकाली दल अभी कुछ समय पहले तक तो इसी फासीवादी भाजपा के साथ गठबन्धन में थी जो अब कृषि क़ानूनों पर विरोध जता रही है। कारण यह है कि अकाली दल भी जानता है कि उसके प्रमुख वर्गीय राजनीतिक निर्वाचक यही धनी-किसानों कुलकों का वर्ग है जिसे वह फ़िलहाल नाराज़ करने का जोख़िम नहीं उठा सकती है। **इसलिए धनी किसान-कुलक वर्ग का फ़ौरी तौर पर भाजपा-विरोध फ़ासीवाद–विरोध कत्तई नहीं है।**

धनी किसान आन्दोलन के नेतृत्व ने एकदम स्पष्ट तौर पर यह बात रेखांकित भी की है कि मौजूदा आन्दोलन फ़ासीवाद-विरोधी आन्दोलन नहीं है; अगर केन्द्र सरकार लाभकारी मूल्य की व्यवस्था को क़ानूनी रूप दे दे तो उन्हें आरएसएस और भाजपा की मज़दूर वर्ग-विरोधी, मुसलमान-विरोधी, दलित-विरोधी, स्त्री-विरोधी फ़ासीवादी राजनीति से कोई विचारधारात्मक तक़लीफ़ या परहेज़ नहीं है। उन्हें तो बस लाभकारी मूल्य के रूप में अपने बेशी मुनाफ़े की गारण्टी चाहिए।

वर्तमान किसान आन्दोलन के फ़ासीवाद विरोधी होने की असलियत उस वक़्त ही ज़ाहिर हो गयी थी जब ग़ाज़ीपुर बॉर्डर के धरने पर समर्थन में आये जामिया के मुसलमान छात्रों को वहाँ से भगा दिया गया था और उनके ख़िलाफ़ पुलिस को बुला लिया गया था। यह तथाकथित फ़ासीवाद विरोधी चरित्र तब भी उजागर हो गया था जब अपेक्षाकृत जनवादी व प्रगतिशील चरित्र रखने वाली भारतीय किसान यूनियन उगराहां ने आन्दोलन के दौरान ही राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के समर्थन में कार्यक्रम किया था और आन्दोलन के बाक़ी किसान नेतृत्व ने बाक़ायदा बयान जारी कर के ख़ुद को इस कार्यक्रम से अलग कर दिया था और स्पष्ट किया था कि आन्दोलन की लड़ाई सिर्फ़ तीन क़ानूनों की वापसी और लाभकारी मूल्य का क़ानून बनवाने तक सीमित है। और यह भी नहीं भूलना चाहिए कि नरेश टिकैत जैसा घोर साम्प्रदायिक कुलक नेता अयोध्या में राम लला के यहाँ किसान आन्दोलन की जीत की कामना करने पहुँचा था!

यह प्रगतिशील शक्तियों का निराशावाद और पराजयवाद है जो उन्हें ऐसे मज़ाक़िया तर्क देने की ओर ले जा रहा है कि धनी किसानों और कुलकों का मौजूदा आन्दोलन एक फ़ासीवाद-विरोधी आन्दोलन है और इसलिए रणकौशलात्मक तौर पर इसका समर्थन किया जाना चाहिए। ऐसा कोई भी ख़यााली पुलाव पकाना सर्वहारा वर्ग और उसकी क्रान्तिकारी ताक़तों के लिए राजनीतिक आत्महत्या के समान होगा। न केवल यह ख़ामख़याली भरा अव्यावहारिक विचार है, बल्कि साथ ही नुक़सानदेह भी है और सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक स्वतन्त्रता को गिरवी रखना है, उसे अपनी शक्तियों को विकसित करने और साथ ही उसकी एक स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति को विकसित करने की आमूलगामी प्रक्रिया को बाधित करना है।

इसके अलावा, धनी किसान आन्दोलन के नेतृत्व के बीच भी उठापटक जारी है। हरियाणा के प्रमुख किसान नेता गुरनाम सिंह चढुनी राकेश टिकैत को उत्तर प्रदेश पर अपनी ऊर्जा व्यय करने की सलाह दे रहे हैं। टिकैत द्वारा पंजाब-हरियाणा के दौरों मारने को लेकर चढुनी काफ़ी उत्साहित नहीं दिख रहे थे! वहीं राकेश टिकैत की राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ 26 जनवरी के घटनाक्रम के बाद आन्दोलन का चेहरा बन जाने की वजह से कुछ ज़्यादा ही ज़ोर मार रही हैं। दूसरी तरफ़, कुछ समय पहले भारतीय किसान यूनियन उगराहां, जो वैसे 'संयुक्त किसान मोर्चा' में औपचारिक तौर पर शामिल नहीं है, आन्दोलन में सक्रिय दुस्साहसवादी व धार्मिक कट्टरपन्थी व अलगाववादी समूहों के साथ भिड़ती हुई नज़र आयी थी। कुलक आन्दोलन के नेतृत्व में दरारें नज़र आनी शुरू हो गयी है, हालाँकि जितने एकीकृत नेतृत्व की छवि पहले भी पेश की जा रही थी वह वास्तव में उतना एकीकृत कभी था नहीं। सरकार को लगातार वार्ता शुरू करने के प्रस्ताव भी भेजे जा रहे हैं, हालाँकि मोदी सरकार ने अभी तक ऐसी कोई तत्परता नहीं दिखायी है। हाल में कृषि मंत्री नरेन्द्र सिंह तोमर ने वार्ता पुनः शुरू करने की बात कही है।

जो भी हो, इतना तय है कि मौजूदा धनी किसान-कुलक आन्दोलन ग्रामीण सर्वहारा और सीमान्त, छोटे, निम्न-मध्यम किसानों के हितों का प्रतिनिधित्व कत्तई नहीं करता है और इसका केन्द्रीय सरोकार लाभकारी मूल्य के रूप में बेशी मुनाफ़े की व्यवस्था को क़ानूनी जामा पहनाने तक सीमित है। इसलिए सर्वहारा वर्ग और ग़रीब किसान आबादी को "बेग़ानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना" कत्तई नहीं बनना चाहिए।

फ़िलिस्तीनी जनता के बहादुराना संघर्ष ने एक बार फिर इज़रायली हमलावरों को पीछे हटने पर मजबूर किया

लेकिन बेशर्म ज़ायनवादी सत्ता फिर गाज़ा को तबाह करने पर आमादा

– लता

पिछले मई में 11 दिनों तक गाज़ा शहर पर भयानक बमबारी के बाद 21 मई को इज़रायल और फ़िलिस्तीनी संगठन हमास के बीच संघर्ष विराम हुआ। इज़रायल तो फ़िलिस्तीनी लोगों के जनसंहार की अपनी मुहिम को जारी रखना चाहता था लेकिन हमेशा की तरह फ़िलिस्तीनियों के ज़बर्दस्त बहादुराना संघर्ष और उनके समर्थन में पूरी दुनिया में सड़कों पर उमड़े जन सैलाब ने, और मुख्यत: इसी के कारण अमेरिका के दबाव ने इज़रायल को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। इज़रायल के हमलों और प्रतिबन्धों के कारण पहले से ही बुरी तरह तबाह गाज़ा पट्टी में इज़रायली बमों ने सैकड़ों घरों को नेस्तनाबूद कर दिया। गाज़ा के स्वास्थ्य अधिकारियों के मुताबिक कम से कम 240 लोग इन हमलों में मारे गये। हमास की ओर से दागे रॉकेटों से इज़रायल में 12 लोग मारे गये।

संघर्ष विराम के बाद भी इज़रायल लगातार उकसावे की कार्रवाइयाँ करता रहा है। संघर्ष विराम घोषित होने के कुछ ही घण्टों के बाद इज़रायली सैनिकों ने यरुशलम में ऐतिहासिक अल अक़्सा मस्जिद के परिसर में घुसकर स्टन ग्रेनेड और गोलियाँ दागीं जिससे 20 लोग घायल हो गये। पास के अल जर्राह इलाक़े में भी प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ चलायी गयीं। सैकड़ों फ़िलिस्तीनियों को गिरफ़्तार भी किया गया है।

इज़रायली प्रधानमंत्री नेतन्याहू की सरकार गिरने के बाद सत्ता में आया शख़्स नफ़्ताली बेनेट फ़िलिस्तीनियों से नफ़रत और ज़ायनवादी अन्धराष्ट्रवाद में उससे भी बढ़कर है। "मैंने बहुत से अरब लोगों की हत्या की है, इसमें क्या बड़ी बात है" जैसी वहशी बातें करने वाले बेनेट की सरकार ने संघर्ष विराम के बाद एक महीना पूरा होने से पहले ही गाज़ा और पूर्वी यरुशलम में फिर से बमबारी शुरू कर दी है।

आज यह समझना बहुत ज़रूरी है कि इंसाफ़ और आज़ादी के लिए फ़िलिस्तीनियों का संघर्ष अकेले उनका संघर्ष नहीं है। यह पूरी दुनिया में नस्लवाद और साम्राज्यवादी दबंगई के विरुद्ध शानदार लड़ाई का एक प्रतीक है। इसीलिए पूरी दुनिया का इंसाफ़पसन्द अवाम उनके पक्ष में बार-बार लाखों की तादाद में सड़कों पर उतरता रहा है। भारत के मेहनतकशों को भी इस शानदार लड़ाई के बारे में अच्छी तरह जान लेना चाहिए और फ़ासिस्टों द्वारा फैलाये जा रहे साम्प्रदायिक झूठ के बहकावे में नहीं आना चाहिए।

मज़दूर वर्ग जब मुक्त कण्ठ से यह नारा बुलन्द करता है कि 'दुनिया के मज़दूरो, एक हो!' तो इसकी गहराई और जिम्मेदारी को वह भली-भाँति समझता है। वह समझता है कि दुनिया के हर कोने में अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे मज़दूर चाहे वह एशियाई हों, अफ़्रीकी हों, लातिन अमेरिकी, मध्य-एशियाई, यूरोपीय या अमेरिकी ही क्यों न हो, उसके भाई हैं और इस नारे से वह बताता है कि उनके संघर्ष में वह साथ है। उनके संघर्ष में एकजुटता का प्रदर्शन कर वह दुनिया भर की पूँजीवादी सत्ताओं को चेतावनी देता है कि दुनिया के किसी भी कोने में लड़ रही मेहनतकश जनता अकेली नहीं है।

मज़दूर वर्ग जब पूँजीवाद के खिलाफ़ जंग का ऐलान करता है तो साथ ही वह समाज में मौजूद जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा आधारित अन्याय, उत्पीड़न और भेदभाव के ख़िलाफ़ भी खड़ा होता है। राष्ट्रीय दमन सामाजिक व राजनीतिक उत्पीड़न के प्रमुख रूपों में से एक है।

ऐसे ही एक ऐतिहासिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का साथ दुनिया भर का मज़दूर वर्ग देता चला आया है। वह है फ़िलिस्तीनी जनता का ज़ायनवादी इज़रायल और अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष। ज़ायनवाद एक धुर दक्षिणपंथी विचारधारा है, धार्मिक और नस्ली कट्टरपंथ पर आधारित एक धुर प्रतिक्रियावादी विचारधारा। इज़रायल नामक देश इसी धुर प्रतिक्रियावादी दक्षिणपंथी विचारधारा का एक औपनिवेशिक प्रयोग है जिसे साम्राज्यवाद ने मध्य-पूर्व में फ़िलिस्तीनी क़ौम को उसके देश से उजाड़कर अपनी सैन्य चौकी के तौर पर खड़ा किया था। फ़िलिस्तीनियों में मुसलमान, यहूदी और ईसाई और साथ ही अन्य धार्मिक समुदाय भी शामिल हैं। इज़रायल ने फ़िलिस्तीन की पूरी आबादी के खिलाफ़ जनरसंहार का सिलसिला कई दशकों से चला रखा है। हर दिन उत्पीड़न और अत्याचार करने के साथ थोड़े-थोड़े अन्तराल पर इज़रायल फ़िलिस्तीनियों के खिलाफ़ युद्ध छेड़ देता है। अमेरिका की भारी मदद से निर्मित अत्याधुनिक हथियारों से लैस इज़रायली सेना के सामने फ़िलिस्तीन के पास अपनी कोई सेना भी नहीं है। हमास नाक संगठन के पास कुछ सौ लड़ाके और पुराने रॉकेट व अन्य हथियार हैं। लेकिन जो चीज़ फ़िलिस्तीनियों के पास है, वह इज़रायल सहित किसी भाड़े की सेना के पास नहीं हो सकती। वह है उनका अदम्य साहस और लड़ने का जज़्बा जिनके दम पर वे बार-बार इज़रायल के मंसूबों को नाकाम करते रहे हैं।

ब्रिटेन के औपनिवेशिक काल के समय से ही फ़िलिस्तीन की जनता संघर्ष कर रही है ज़ायनवादी इज़रायलियों के विरुद्ध, उनके अत्याचारों, शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध। ज़ायनवादी विचारधारा अपने जन्म के काल में एक नस्ली श्रेष्ठतावादी उपनिवेशवादी विचारधारा थी। अपने जन्म के समय से ही सत्तापरस्त यह सोच आम मेहनतकश अवाम की विरोधी रही है। (फ़िलिस्तीन पर ब्रिटेन का मैंडेट 1918 में बना और इसी के आधार पर 1920 में मैंडेटरी फ़िलिस्तीन अस्तित्व में आया।)

ज़ायनवाद की विचारधारा का संस्थापक थियोडोर हर्ज़ल और बाद में इसका दूसरा प्रमुख नेता हाइम विज़मान अपना प्रोजेक्ट लेकर साम्राज्यवादी देशों के आगे-पीछे डोलते रहे। 19वीं सदी के मध्य या अन्त से अपनी विचारधारा की उत्पत्ति बताने वाले इन ज़ायनवादियों को अहमियत प्रथम विश्व युद्ध के दौरान मिली जब ब्रिटेन को समझ आया कि मध्यपूर्व को लेकर उसकी जो महत्वाकांक्षा और योजना है, उसमें ज़ायनवाद काफ़ी मददगार हो सकता है। नतीजतन, ज़ायनवाद के सेल्समैन को एक ग्राहक मिल गया। तेल के अकूत भण्डार मिलने और भारत तक पहुँचने का सीधा रास्ता होने की वजह से ब्रिटेन के लिए फ़िलिस्तीन रणनीतिक महत्व रखता था।

आधुनिक साम्राज्यवाद के दौर में यह बात स्पष्ट होती जा रही थी कि प्रत्यक्ष उपनिवेशों का दौर बीतता जा रहा है। ऐसे में पश्चिम साम्राज्यवादी तकतें अपने साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए ऐसे मित्र राष्ट्रों की तलाश करने लगे जो राजनीतिक तौर पर स्वतंत्र तो हो लेकिन आर्थिक तौर पर उनकी निर्भरता बनी रहे। यह ज़ाहिर सी बात थी कि आर्थिक निर्भरता और राजनीतिक स्वतंत्रता के बीच द्वन्द्व बना रहेगा। इज़रायल के साथ अमेरिका के सम्बन्ध इसी ओर एक क़दम था। हालाँकि अन्य नवस्वाधीन राष्ट्र-राज्यों की तुलना में इज़रायल इस मामले में भिन्न था क्योंकि उसका जन्म ही मध्यपूर्व में पश्चिमी साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए हुआ था और इसका जन्म एक सेटलर कॉलोनी के रूप में हुआ था। यह पहले ब्रिटेन और फिर बाद में अमेरिका के लिए मिलिट्री चेक पोस्ट का काम करता चला आ रहा है।

इस पूरे क्षेत्र का रणनीतिक महत्व इस मायने में है कि जिस साम्राज्यवादी धड़े का भी इस क्षेत्र के अकूत तेल भण्डार पर नियंत्रण होगा, उसका वर्चस्व विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में स्थापित होगा। इस बात का इल्म सभी साम्राज्यवादी देशों को था इसलिए इस क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए सभी प्रमुख साम्राज्वादी देश जैसे फ्रांस, ब्रिटेन और अमेरिका प्रयासरत थे।

ब्रिटेन की साम्राज्यवादी योजना के तहत इज़रायल इस क्षेत्र में उनका चेक पोस्ट बना। बाद में यह अमेरिका की सैन्य चौकी में तब्दील हो गया। इसके निर्माण और उसे चाक-चौबन्द रखने के लिए पहले ब्रिटेन और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका हर वर्ष करोड़ों रुपये खर्च करता आया है। अमेरिका में चाहे रिपब्लिकन की सरकार हो या डेमोक्रैट की, हर साल इज़रायल को सैन्य मदद देने के लिए करोड़ों डॉलर की धनराशि दी जाती है। 1949 से लेकर अब तक अमेरिका ने इज़रायल को जितने पैसे दिये हैं उसे देखकर समझा जा सकता है कि अमेरिका ने इस लठैत को पूरे लाड़ से पाल-पोस कर बड़ा किया है।

यहाँ तक कि "शान्ति का नोबल पुरस्कार" जीतने वाले राष्ट्रपति बराक ओबामा ने इज़रायल को सैन्य सहयोग के तौर पर अब तक की सबसे बड़ी राशि देने की शुरुआत की। 2016 से आने वाले दस सालों के लिए प्रति वर्ष 380 करोड़ डॉलर की राशि इज़रायल को मिल रही है। क्या अमेरिका को नहीं पता कि यह पैसा आम मासूम फ़िलिस्तीनियों के ख़िलाफ़, उनके नरसंहार और जगह-ज़मीन हथियाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है; निहत्थे नागरिकों, बच्चों, बुजुर्गों और गर्भवति महिलाओं का क़त्ल करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है? अमेरिका द्वारा इज़रायल को 1949 से आज तक दी गयी हज़ारों डॉलर धनराशि इसी बात को सत्यापित करती है कि ऐसे सहयोग का उद्देश्य रणनीतिक महत्व वाले मध्य-पूर्व पर अपना नियंत्रण बनाये रखना है और यह पैसा उसकी क़ीमत है।

फ़िलिस्तीन में इज़रायल की स्थापना की ओर पहला कदम 1917 में बाल्फ़ोर घोषणा के साथ ब्रिटेन ने उठाया और इस क्षेत्र पर नियंत्रण के लिए अपना गुण्डा तैयार करना शुरू किया। फिर शुरू होता है फ़िलिस्तीनियों की ज़मीन हथियाने, उन्हें बेघर करने, उनके सस्ते श्रम का शोषण करने, उनके अपमान और दोयम दर्जे के नागरिकों में तब्दील करने का अनवरत सिलसिला। उस समय ब्रिटेन ने अपनी सेना और हथियारों के बूते ज़ायनवादियों को ज़मीनें दिलवायीं। फ़िलिस्तीनियों के गाँव के गाँव उनसे छीन लिये गये। 1948 में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र ने यहूदियों को "राज्य से वंचित राष्ट्र" बताते हुए उनकी प्राचीन ज़मीन पर उनके लिए एक राज्य बनाने का निर्णय लिया। इज़रायल राज्य की आधिकारिक घोषणा में लगभग बाल्फ़ोर घोषणा की बातों को ही दुहराया गया।

जर्मनी में यहूदियों के साथ हुए अत्याचार के बाद पूरे विश्व में इनके प्रति सहानुभूति की लहर थी। लेकिन जर्मनी के यंत्रणा शिविरों से निकले यहूदियों को कोई अपने देश में लेने को तैयार नहीं था। यहूदियों के अपने राज्य को मान्यता मिली लेकिन पहले से ही यहाँ मौजूद ज़ायनवादियों ने धीरे-धीरे संयुक्त राष्ट्र द्वारा चिह्नित सीमाओं का अतिक्रमण करना शुरू कर दिया। उन्हें अब आधिकारिक समर्थन और अन्तरराष्ट्रीय मान्यता मिल गयी थी। 1948 में फ़िलिस्तीनी अरब नागरिकों से ज़मीनें जबरन छीनी गयीं, उन्हें बेघर किया गया और उनका जनसंहार हुआ। यही था 1948 का **नकबा**। उसके बाद से साल-दर-साल अरब फ़िलिस्तीनियों को विस्थापित करते हुए और अपने सेटलमेंट (यहूदी बस्तियाँ) बना-बनाकर ज़ायनवादी इज़रायलियों ने फ़िलिस्तीनियों को गाज़ा पट्टी और पश्चिमी तट के थोड़े से इलाक़े में सीमित कर दिया है। रही सही जगह पर भी हर दिन उनकी नयी यहूदी बस्तियाँ बनती जा रही हैं। इसके लिए इज़रायली पूरी बेशर्मी और दादागीरी के साथ औरतों, बच्चों, बुज़ुर्गों तक की हत्या को जायज़ ठहराते हैं।

इसी साल, यानी मई 2021 में पूर्वी यरुशलम और गाज़ा में ज़मीन हथियाने और गाज़ा पर हमले को सही ठहराते हुए तत्कालीन इज़रायली प्रधानमंत्री नेतन्याहू ने कहा था, "मैं अपने सभी दोस्तों को स्पष्ट तौर पर कह देना चाहता हूँ कि पूरा यरुशलम इज़रायल की चिरस्थाई राजधानी है और हम यहाँ और इसके आस-पास के इलाक़ों में निर्माण कार्य जारी रखेंगे जैसे कोई भी अन्य राष्ट्र अपनी राजधानी का निर्माण और विकास करता है। एक स्वायत्त राज्य में यह हमारा नैसर्गिक अधिकार है"। लेकिन इज़रायल वास्तव में एक औपनिवेशिक सेटलर परियोजना है जो कि पश्चिमी साम्राज्यवाद के हितों की मध्य-पूर्व में सेवा के लिए बनाया गया है। और इस "स्वायत्त राष्ट्र" में "राजधानी का निर्माण" वहाँ के असली राष्ट्र, यानी फ़िलिस्तीनियों को बेदख़ल कर, उनका कत्ल करके और उन पर बेइन्तहा ज़ुल्म ढाकर किया जा रहा है।

अपने ही देश में एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए फ़िलिस्तीनियों को कई चेक पोस्ट से गुज़रना पड़ता है और हर चेक पोस्ट पर रोज़ उन्हें ज़िल्लत, अपमान, हिंसा और अपशब्दों का सामना करना पड़ता है। एक बार चेक पोस्ट बन्द होने के बाद चाहे कितना भी आपातकाल क्यों न हो, किसी की जान जाती हो, कोई गर्भवती स्त्री हो, दूसरी तरफ़ जाने के लिए चेक पोस्ट नहीं खुल सकता। समय पर अस्पताल या डॉक्टर नहीं मिलने की वजह से हर रोज कइयों की जाने जाती हैं। यह तो रोज़मर्रा की कहानी है। फ़िलिस्तीनियों पर छोटे-मोटे सैन्य हमले हर साल-छह महीने पर तो होते ही रहते हैं। वर्ष 2000 से अब तक, 2006, 2008-09, 2012, 2014,

(पेज 12 पर जारी)

फ़िलिस्तीनी जनता का बहादुराना संघर्ष...

फ़िलिस्तीन असह्य दुखों के लम्बे सिलसिले की, दुर्द्धर्ष मुक्ति संघर्ष की और उद्दाम आशावाद की एक महाकाव्यात्मक गाथा है

(पेज 11 से आगे)

2018 और अब मई 2021 में 6 बड़े हमले हो चुके हैं जिनमें सैकड़ों लोगों की जानें गयी हैं। इज़रायल और उसका पक्षधर मीडिया इन हमलों की वजह हमास की आतंकवादी कार्रवाई बताता है। लेकिन हमास का मुख्य आधार तो गाज़ा पट्टी में है और पश्चिमी तट में फ़िलिस्तीनी अथॉरिटी और 'फ़तह' संगठन का दबदबा है। फिर पश्चिमी तट के के फ़िलिस्तीनियों के साथ ऐसा व्यवहार क्यों? क्यों उन्हें उनके घरों से निकाला जा रहा है? सड़कों पर गोलियों से भून दिया जाता, अगवा किया जाता है और बात-बात पर पूरे क्षेत्र की बिजली-पानी काट दी जाती है? वैसे तो गाज़ा पर कार्रवाई के लिए हमास का नाम लेना भी इज़रायल का एक बहाना ही है। उसके हमले में सबसे बड़ी संख्या में आम नागरिक, बच्चे और बुज़ुर्ग मारे जाते हैं, घरों, स्कूलों और अस्पतालों पर बमबारी की जाती है और बिजली व पानी की आपूर्ति तहस-नहस कर दी जाती है।

स्पष्ट है इज़राइल की ज़ायनवादी परियोजना फ़िलिस्तीनियों के सतत् दमन और उत्पीड़न पर ही आधारित है। लेकिन फ़िलिस्तीनियों का आज तक का संघर्ष इतिहास की इस सीख को फिर से सच साबित कर रहा है कि जब आम मेहनतकश लोग अपने अस्तित्व की लड़ाई में उतरते हैं, तो बड़े से बड़े हथियारों के ज़खीरे जन सैलाब में डूब जाते हैं।

इस वर्ष मई 2021 में इज़रायली हमले का कारण बना जेरुसलम के पूर्व में शेख ज़र्रा इलाका जो अरब फ़िलिस्तीनियों के अधिकार में है। वहाँ इज़रायली सेना राजधानी के निर्माण के नाम पर जबरन उनके घरों में घुस कर उन्हें बाहर निकालने और घरों पर कब्ज़ा जमाने का प्रयास करने लगी। 2017 में अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति ट्रम्प ने यरुशलम को इज़रायल की राजधानी के तौर पर मान्यता दे दी थी, हालाँकि संयुक्त राष्ट्र के 128 देशों ने इस प्रस्ताव के विरुद्ध वोट दिया था। यरुशलम को राजधानी घोषित कर इज़रायल के प्रधानमंत्री नेतन्याहू ने उसके एक हिस्से में बसे फ़िलिस्तीनियों को बाहर निकालने की कार्रवाई शुरू कर दी थी।

फ़िलिस्तीनियों ने हज़ारों की संख्या में एकत्र होकर इसका प्रतिरोध किया। प्रतिरोध की जगह अल-अक्सा मस्जिद बनी। अगले ही दिन प्रतिरोध में गाज़ा से कुछ रॉकेट छोड़े गये और फिर इज़रायल की ओर से गाज़ा पर बमबारी शुरू हो गयी। हमास ने इज़रायलियों द्वारा फ़िलिस्तीनियों को उनके घरों से बाहर निकालने और अल-अक्सा मस्जिद पर हमले के प्रतिरोध में मिसाइलों से हमला किया। हालाँकि अत्याधुनिक सैन्य तकनीक से लैस इज़रायल के लिए यह हमला बहुत भारी नहीं पड़ता। ज़मीनी लड़ाई में वह गाज़ा में नहीं टिक सकता लेकिन अमेरिका के बूते तैयार उन्नत सैन्य तकनीक और विकसित सुरक्षा तंत्र के बूते यह अपनी रक्षा कर ले जाता है लेकिन गाज़ा के लड़ाकों ने इस बार कई गुना ज़्यादा बारंबारता के साथ रॉकेट बरसाए जिससे कि एक दर्जन इज़रायली मारे गए और कई दर्जन घायल हुए। इसकी तुलना में कई गुना ज़्यादा फ़िलिस्तीनी मारे गये।

हमास आज गाज़ा में प्रतिरोध संघर्ष को नेतृत्व दे रहा है। हमास को एक समय पश्चिमी साम्राज्यवादियों द्वारा यासर अराफ़ात के नेतृत्व वाले फ़िलिस्तीनी मुक्ति संगठन (पीएलओ) की अगुवाई में चल रहे जुझारू प्रतिरोध संघर्ष को कमज़ोर करने के लिए समर्थन और प्रश्रय दिया गया था। पर आज का हमास साम्राज्यवादियों का उपकरण नहीं रह गया है। आज का हमास जनदबाव में फ़िलिस्तीनियों का जुझारू नेतृत्व बन गया है। पीएलओ के समझौतापरस्त होने और फ़तह के कम्युनिस्ट धड़े के जनता के बीच अपनी जगह नहीं बना पाने की वजह से संघर्ष का नेतृत्व धार्मिक कट्टरपंथी ताकतों के हाथों में चला गया। धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील ताकतों के समझौतापरस्त होने या जनता में लोकप्रिय नहीं हो सकने की वजह से रिक्त स्थान की पूर्ति हमास ने की। फ़िलिस्तीनी अवाम मध्यपूर्व में सबसे धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील अवाम में से एक थी और आज भी है। इसी अवाम के दबाव में आज का हमास भी बदल गया है। आज का हमास प्रतिरोध युद्ध के नेतृत्व की वजह से जनता में मज़बूत सामाजिक आधार वाला संगठन बन गया है जिसके योद्धाओं की भर्ती आम फ़िलिस्तीनी नौजवानों से होती है। आज भी हमास एक इस्लामिक संगठन है, लेकिन फ़िलिस्तीनी जनता के राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध का वही नेतृत्व कर रहा है और अपने धार्मिक स्वर को भी उसने कम कर दिया है।

पूरे विश्व में इज़रायल-समर्थक मीडिया हमास को आतंकवादी संगठन बताता है और इज़रायली हमले के लिए उसे ज़िम्मेदार ठहराता है। मगर यह बात साफ़ है कि आम मेहनतकश जनता आम तौर पर किसी आतंकवादी संगठन को समर्थन और पनाह नहीं देती। 2006 में आम चुनावों में हमास गाज़ा में सबसे बड़ी पार्टी की तरह उभरा और उसने चुनी हुई सरकार का गठन किया। लेबनान में मुँहकी खाने और हमास की सरकार बनाने से घबराया इज़रायल और अमेरिकी साम्राज्यवाद हमास को आतंकवादी करार देकर उस पर हमले करता है। साम्राज्यवाद और पूँजीवाद हमेशा ही जनता के प्रतिरोध युद्ध को आतंकवादी क़रार देते हैं। इज़रायली हमलों की असली वजह गाज़ा को तबाह करना होता है और हमास मात्र बहाना बनता है। लेकिन हर हमले के बाद हमास फ़िलिस्तीनी जनता में अधिक-से-अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है।

मई 2021 में गाज़ा पर हुआ हमला 2014 से भी अधिक बर्बर था। हमास ने भी जम कर प्रतिरोध किया। हमास ने प्रतिरोध में लगभग साढ़े तीन हज़ार रॉकेट्स दागे। इज़रायल के अत्याधुनिक आयरन डोम मिसाइल डिटेक्टर की वजह से 90 प्रतिशत रॉकेट निशाने पर नहीं लगे। लेकिन समुद्र और स्थल दोनों ही रास्तों पर घेरेबन्दी के बावजूद हमास ने गाज़ा की आत्मरक्षा के लिए रॉकेट और मिसाइलें बनाईं और हथियारों का इंतज़ाम किया और कर रहा है। ज़ाहिर है यह जनता के सहयोग के बिना संभव नहीं है। इस हमले में फ़िलिस्तीन के 240 लोगों की जानें गयीं जिनमें 65 बच्चे, 39 औरतें और 17 बुज़ुर्ग हैं।

गाज़ा दुनिया के सबसे सघन आबाद इलाकों में एक है। ऐसे सघन आबाद क्षेत्र में मिसाइल हमला करना एक जघन्य अपराध है। पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों के शासक वर्ग इस अपराध के मूक दर्शक बने रहते हैं। लेकिन दुनियाभर की आम जनता फ़िलिस्तीन के समर्थन में सड़कों पर उतरती है। इस बार भी हज़ारों की संख्या में लन्दन, न्यूयॉर्क, पेरिस, तुर्की, लेबनान, दक्षिण अफ़्रीका, मोरक्को, लातिन अमेरिका के देशों में लोग इज़रायली हमले के ख़िलाफ़ और गाज़ा के समर्थन में सड़कों पर उतरे और अपनी-अपनी सरकारों पर दबाव बनाया। फ़िलिस्तीनी जनता के जुझारू संघर्ष और अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर किरकिरी के बाद ज़ायनवादी इज़रायल को युद्धविराम के लिए मानना पड़ा। 21 मई को इज़रायल और हमास ने युद्धविराम की घोषणा की।

मई 2021 के इज़रायली हमले के प्रतिरोध में पूरी फ़िलिस्तीन और अरब की जनता ने एक बार फिर जबरदस्त एकजुटता का प्रदर्शन किया। इस बार के प्रतिरोध ने एक बार फिर 1936 के विद्रोह की याद दिला दी। इज़रायलियों के आक्रामक विस्तार के विरोध में अरब फ़िलिस्तीनी आबादी ने 1936 में फ़िलिस्तीन के औपनिवेशिक इतिहास में सबसे लम्बी हड़ताल की थी। यह हड़ताल 6 महीनों तक चली। इस बार गाज़ा पर इज़रायली हमले के दौरान पूरे पश्चिमी तट के मेहनतकशों ने आम हड़ताल की घोषणा की और इसे युद्ध विराम तक जारी रखा। हड़ताल के दौरान सभी आर्थिक कार्य स्थगित कर दिये गये और सभी शैक्षणिक संस्थान बन्द रहे। पूरे मध्यपूर्व, फ़िलिस्तीन और इज़रायल की यहूदी बस्तियों में श्रम करने वालों का सबसे बड़ा हिस्सा फ़िलिस्तीनी मज़दूरों का है और यह सबसे सस्ता श्रम भी है। पूरे क्षेत्र के मजदूरों ने प्रतिरोध में आम हड़तालें की और बड़ी संख्या में सड़कों पर उतरकर गाज़ा के संघर्ष को अपना समर्थन दिया। आर्थिक गतिविधियों के पूर्ण रूप से स्थगित होने पर इज़रायल की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा और उस पर दबाव बना। जनता के जारी संघर्ष और अन्तरराष्ट्रीय दबाव में नेतनयाहू को संघर्ष विराम का समझौता करना पड़ा। लेकिन गाज़ा के लोग और पूरी फ़िलिस्तीनी जनता जानती है कि यह मात्र अगले तूफ़ान तक की शान्ति है। मासूम बच्चों का कत्ल, नौजवानों की गिरफ़्तारियाँ, अपहरण, घरों पर जबरन कब्ज़ा, जैतून के खेतों का जलाया जाना, इस बीच जारी रहेगा।

इज़रायलियों की बर्बरता की कल्पना किसी भी सामान्य नागरिक के बस की नहीं है। इनकी सोच कितनी मानवद्रोही, पतित और क्रूर है, इसका अन्दाज़ा उनके इस नारे से लगाया जा सकता है कि "एक को गोली दागो और दो को मारो", यानी गर्भवती औरतों को गोली मारो ताकि दो जानें चली जायें। इज़रायली संसद नेसेट की एक महिला सांसद कहती है कि सारी फ़िलिस्तीनी माँओं की हत्या कर दी जानी चाहिए जो कि "सपोलों को जन्म देती हैं।" ऐसी बातें सुनकर आपको कुछ याद आया? जी हाँ, 2002 के गुजरात दंगों में ऐसे ही नारे संघी फ़ासिस्ट लगा रहे थे और आज भी वे ऐसी बातें करते रहते हैं। इज़रायली ज़ायनवादियों के प्रति संघियों का लगाव यूँही नहीं है।

आज फ़िलिस्तीन और गाज़ा की जनता संघर्ष कर रही है और पूरी दुनिया की इंसाफपसंद जनता उनके संघर्ष का साथ देती है। लेकिन एक दौर था जब पश्चिमी साम्राज्यवाद के प्रतिरोध में कई अरब देश एकजुट हो कर लड़ रहे थे। 1950, 60 और 70 के दशक में फ़िलिस्तीनियों के साथ हो रहे अन्याय के विरुद्ध अरब जनता और अरब देशों की सरकारें भी एक हद तक साथ आयीं। यह अखिल अरब राष्ट्रवाद का दौर था। दो बड़े और कुछ छोटे इज़रायल-अरब युद्ध हुए। लेकिन अरब देशों के शासक वर्गों की अपनी महत्वाकांक्षा, आपसी अन्तरविरोध और फूट की वजह से इज़रायल के समक्ष कोई सशक्त प्रतिद्वन्द्वी खड़ा नहीं हो पाया। मिस्र के राष्ट्रपति अनवर सदात और इज़रायल के बीच 1978 में हुआ कैम्प डेविड शान्ति समझौता अखिल अरब राष्ट्रवाद को लगा पहला बड़ा झटका था। मिस्र अपनी क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाओं के लिए अखिल अरब राष्ट्रवाद और फ़िलिस्तीनी संघर्ष को तिलांजलि दे चुका था। फिर एक-एक कर सभी देश सीरिया, जॉर्डन, लेबनान आदि छिटकने लगे। फ़तह भी समझौते की राह पर चल पड़ा। राष्ट्रीय संघर्षों की ऊष्मा कम होने लगी थी और कई नव स्वाधीन पूँजीवादी राष्ट्रों का शासक पूँजीपति वर्ग अपने-अपने हितों के लिए अलग-अलग स्तर पर साम्राज्यवाद के साथ समझौते और मोल-भाव करने लगे। ऐसे ही दौर में फ़िलिस्तीन की जनता ने अपनी कमर कसी और अपने बूते संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए सामने आयी। दोनों इन्तिफ़ादा जनता के अजेय-अमर संघर्ष की गाथा है। हमास के नेतृत्व सँभालने की परिस्थितियों पर हम पहले चर्चा कर चुके हैं।

आज पूरा मध्यपूर्व ज्वालामुखी के मुहाने पर बैठा है। आधुनिक साम्राज्यवाद के लिए सबसे महत्वपूर्ण रणनीतिक क्षेत्र होने की क़ीमत फ़िलिस्तीन और पूरे मध्यपूर्व की जनता बीसवी सदी के दूसरे दशक से चुकाती चली आयी है। विश्व में सबसे अधिक प्रवासी और शरणार्थी अगर कहीं के हैं तो वह है मध्यपूर्व। इराक़, ईरान, सीरिया, फ़िलिस्तीन, मिस्र, यमन सहित इस पूरे क्षेत्र को अपने साम्राज्यवादी हितों की रक्षा और साम्राज्यवादी चौधराहट बनाये रखने के लिए अमेरिका जलाता-सुलगाता

(पेज 18 पर जारी)

भारतीय राज्यसत्ता द्वारा बस्तर में क़त्लेआम जारी...

नक्सलवाद बहाना है, जनता ही निशाना है!

– अनन्त

राज्यसत्ता द्वारा छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में पिछले दो दशक से जारी बर्बर खूनी दमन में एक नया अध्याय बीते 17 मई को जोड़ा गया। उस दिन सुकमा जिले के सिलगर गाँव के पास नव स्थापित शिविर के ख़िलाफ़ शान्तिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे लोगों के ऊपर सुरक्षा बलों ने अन्धाधुन्ध गोलीबारी की, जिसमें आधिकारिक तौर पर 3 लोग मारे गये और 16 ज़ख़्मी हुए। मारे गये ग्रामीणों की पहचान तीमापुरा के उईका पांडु, गुंडम के भीमा उर्सम और सुडवा गाँव के कवासी वागा के रूप में हुई है। उईका पांडु उर्फ मुरली महज 16-17 वर्ष का नाबालिग किशोर था; हालाँकि स्थानीय पुलिस किसी भी नाबालिग के हताहत होने के तथ्य को सिरे से झुठला रही है। किन्तु स्थानीय ग्रामीणों का कहना है कि कुल मरने वालों की संख्या 9 है, जिसमें 6 लोग लापता हैं; तथा ज़ख़्मी लोगों की संख्या क़रीब 40 है, जिसमें 3 लोग गोली लगने तथा बाकी लाठीचार्ज, भगदड़ व अन्य कारणों की वजह से ज़ख़्मी हुए। पूनम सोमिली नामक एक गर्भवती महिला उस दिन की घटना में आयी चोट के कारण बाद में मारी गयीं।

यह घटना इस क्षेत्र में बीते दो दशक से अधिक समय से जारी भयंकर बर्बर राजकीय हिंसा का ताज़ा उदहारण मात्र है। सिलगर सुकमा जिले में बीजापुर और सुकमा जिले के बोर्डर के पास स्थित है। यह दक्षिण बस्तर में, सघन विशाल जंगली इलाके से गुज़रने वाली 90 किमी लम्बी बासागुड़ा-जगरगुंडा की महत्वाकांक्षी सड़क परियोजना में एक पड़ाव है, जो सदियों से बसे आदिवासी गाँवों को, घने जंगल को, उजाड़कर बनाया जा रहा है। इस सड़क के किनारे जगह-जगह पर सुरक्षा बलों के नए शिविर खड़े किये जा रहे हैं। ऐसा ही एक शिविर 12 मई की रात लगभग 3 बजे चोरी-छिपे सिलगर में स्थापित किया गया। सिलगर गाँव के बाशिन्दों को इस बाबत कोई भनक तक नहीं थी। अगले दिन सिलगर में साप्ताहिक हाट के लिए पड़ोसी गाँव से आये लोगों ने उन्हें नए स्थापित शिविर के बारे में बताया।

यह इलाका 'पाँचवें अनुसूचित क्षेत्र' में पड़ता है, जहाँ विकास परियोजनाओं को ग्राम परिषद से अनुमोदन की आवश्यकता होती है। आम ग्रामीणों तथा ग्राम परिषद से अनुमोदन तो दूर शिविर की स्थापना बिना उनकी जानकारी के की गयी। ग्राम पंचायत से अनुमति लेने का काम काग़ज़ों पर "फ़र्जी ग्राम सभा" बनाकर लिया गया। नए शिविर की जानकारी मिलते ही क़रीब चालीस-पचास ग्रामीण इस बाबत जानने तथा अपना विरोध दर्ज़ कराने पहुँचे। उनकी बात सुनना तो दूर, बल प्रयोग के जिस मक़सद से शिविर स्थापित किया गया था, उसकी शुरुआत कर दी गयी। जानकारी लेने और विरोध दर्ज कराने पहुँचे लोगों पर प्रशासन द्वारा लाठीचार्ज किया गया, जिसमें 24 लोग घायल हो गये। उस घटना के अगले दिन से लोग बड़ी संख्या में कैम्प के ख़िलाफ़ प्रदर्शन पर बैठ गये। आसपास की पाँच ग्राम पंचायतों से क़रीब एक हज़ार लोग कैम्प को निरस्त करने की माँग को लेकर धरने पर बैठ गये। पुलिस तथा सुरक्षा बलों ने पहले ही दिन से प्रदर्शनकारियों पर बल प्रयोग करने का काम शुरू किया। 14 से 16 मई तक, बड़ी संख्या में महिलाएँ और पुरुष सिलगर और पड़ोसी गाँवों से शिविर के पास सड़क पर इकट्ठा होते रहे। इस दौरान पुलिस हर दिन प्रदर्शनकारियों को तितर-बितर करने के लिए लाठी, आँसू गैस या मिर्ची पटाका का इस्तेमाल कर रही थी। इन दिनों दर्जनों प्रदर्शनकारी मामूली रूप से घायल हुए और स्थानीय इलाज के लिए अपने गाँव लौट गये। 17 को सुरक्षाबलों ने एसपी, बीजापुर और आईजी बस्तर के आदेश पर प्रदर्शनकारियों को सड़क पर दो तरफ़ से घेरकर उनपर अन्धाधुन्ध गोलियाँ बरसा दीं। उस रोज़ आज़ादी के बाद के जनरल डायरों की फ़ेहरिस्त में कुछ और नाम जुड़ गये।

गोदी मीडिया इस घटना को नक्सलियों और सुरक्षा बलों के मुठभेड़ के तौर पर पेश कर रहा है। जबकि, सच्चाई दिन के उजाले की तरह साफ है कि वहाँ राज्यसत्ता द्वारा शान्तिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे निहत्थे प्रदर्शनकारियों के ऊपर हमला किया गया था। पुलिस की बेदम कहानी कहती है कि 17 तारीख को आये प्रदर्शनकारी पिछले दो रोज़ के शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकारी नहीं थे, बल्कि 3000 लोगों की एक नयी भीड़ थी, जिसमें से कई हथियारबन्द थे, और उन्होंने शिविर को फूँकने के मकसद से हमला किया था। जिसके बाद बचाव के तौर पर पुलिसबल द्वारा गोलीबारी की गयी, जिसमें मारे गये तीनों मृतक माओवादी हमदर्द थे। शिविर सड़क के बगल में, कुछ सौ मीटर के फ़ासले पर, स्थापित किया गया है। सड़क और शिविर के बीच में कँटीले तारों की दो पंक्तियाँ हैं और शिविर के बाहर दो बख़्तरबन्द वाहन खड़े किये गये हैं। शिविर के अन्दर-बाहर आधुनिक हथियारों से लैस सुरक्षा बल भारी संख्या में उपस्थित है। ऐसे में भीड़ द्वारा आगज़नी के प्रयास की पुलिसिया कहानी कोरी गपबाज़ी से अधिक कुछ नहीं है।

बस्तर क्षेत्र में पिछले दो वर्षों में केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस बल के नये शिविरों की स्थापना और उनके ख़िलाफ़ बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन आम परिघटना है। किन्तु ये विरोध प्रदर्शन बिरले ही मुख्यधारा की मीडिया में अपना स्थान बना पाते हैं, और देश के बाकी हिस्सों तक इसकी जानकारी पहुँच पाती है। नतीजतन सत्ता बड़ी आसानी से इन प्रदर्शनों का बर्बर दमन कर नये शिविरों को स्थापित करती रहती है। मौजूदा विरोध प्रदर्शन के बावजूद सरकार "ख़तरे" का हवाला देकर सुरक्षा बलों के और नये शिविरों को स्थापित करने की योजना बना रही है।

राज्यसत्ता द्वारा वहाँ पर बच्चों, नौजवानों, महिलाओं, गरीबों, आदिवासियों के ऊपर ज़ुल्म की इन्तिहा जारी है। यौन उत्पीड़न, फ़र्ज़ी मुठभेड़ों, झूठे मामलों में फँसाना, पिटाई आदि को उनके जीवन का आम हिस्सा बना दिया गया है। ऐसी ढेरों वारदात को अंजाम दिया गया जिनका कहीं कोई ज़िक्र तक नहीं है। निहत्थे लोगों का क़त्लेआम बेहद आम है, किसी की भी हत्या के बाद सुरक्षाबलों को केवल उन्हें "नक्सलवादी" का ठप्पा लगाना होता है। 17 मई की घटना के महज़ पाँच रोज़ बाद ही एक अन्य घटना में नये बने एक सुरक्षा शिविर के पास एक अन्य निहत्थे मिडियम मासा की पुलिस गोलीबारी में मौत हो गयी। स्थानीय लोगों के अनुसार, मासा दो अन्य लोगों के साथ तोलेवर्ती गाँव में आम इकट्ठा कर रहा था, और सीआरपीएफ़ के जवानों के पहुँचने पर उसकी कथित तौर पर गोली मारकर हत्या कर दी गयी।

"नक्सलवाद से निपटने" के नाम पर स्थापित किये जा रहे इन शिविरों का असल निशाना वहाँ की आम मेहनतकश ग़रीब आबादी है। इन शिविरों ने आदिवासी बहुल बस्तर इलाके में आम जनता के ऊपर ज़ुल्म और बर्बरता की नयी इबारतें लिखी हैं। बीते दो दशक में चाहे केन्द्र में कांग्रेस-नीत संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन या भाजपा-नीत राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन क़ाबिज़ हो, दमन और हत्याओं का सिलसिला रुका नहीं है। रमण सिंह सरकार ने आदिवासियों के दमन का काम जहाँ पर छोड़ा था, कांग्रेसी भूपेश बघेल की सरकार उसे वहीं से आगे बढ़ा रही है। 2018 के बाद से आदिवासियों की ज़मीनों पर स्थानीय आबादी के दमन के लिए नित नये शिविरों को बनाया जा रहा है। केन्द्र में कांग्रेस और राज्य में भाजपा सरकार की जोड़ी ने पहले सलवा जुडूम तथा ग्रीन हंट जैसी भयंकर दमनकारी मुहिम को अंजाम दिया और अब केन्द्र में सत्तासीन फ़ासीवादी सरकार तथा राज्य की कांग्रेसी सरकार गुप-चुप किन्तु व्यवस्थित तरीके से दमन और क़त्लेआम को अंजाम दे रही हैं। कुकुरमुत्तों की तरह बनाये जा रहे नये सीआरपीएफ़ शिविर तथा जंगल के बीचों बीच बनायी जा रही महत्वाकांक्षी सड़क परियोजना उसी का हिस्सा है।

वहाँ दमन का आलम यह है कि पुलिस जब तब किसी को भी उठाकर गायब कर देती है। 'छत्तीसगढ़ विशेष जन सुरक्षा कानून, 2005' ('सी. एस.पी.एस.ए.', 'छत्तीसगढ़ स्पेशल पब्लिक सिक्योरिटी एक्ट 2005') के तहत पुलिस किसी भी व्यक्ति को माओवादी होने या उनके समर्थक होने के शक मात्र पर गिरफ़्तार कर सकती है। मानवाधिकार, जनवादी अधिकारों की वकालत करने वाले कई कार्यकर्त्ताओं तथा आम ग्रामीणों को सरकार इसके तहत जेल भेज चुकी है। वहाँ सत्ता द्वारा गाँव के गाँव फूंके गये, तबाह बर्बाद किये गये, गाँव के बाशिन्दों को दर-बदर होने के लिए मजबूर किया गया। सुनियोजित तरीके से आदिवासियों को उनके गाँवों से विस्थापित कर अपने ही देश में शरणार्थियों की तरह शिविरों में भर दिया गया है, जहाँ उन्हें बेहद अमानवीय ढंग से बन्दूकों के साये में रहने के लिए विवश किया जाता है। छत्तीसगढ़ के अलावा तेलंगाना और आन्ध्र प्रदेश में वहां के विस्थापित लोगों को 'आतंरिक विस्थापित जन शिविर' में बसाया गया है। इस विषय पर काम कर रहे एक एनजीओ के मुताबिक बस्तर से विस्थापित लगभग 65000 लोगों को तेलंगाना तथा आन्ध्रप्रदेश में, तथा 35000 लोगों को छत्तीसगढ़ में ही ऐसे शिविरों में बसाया गया है। यहाँ संगीन के साये में जीवन किसी नरक से कम नहीं है, अधिकांश लोग कुपोषित हैं और टीबी जैसी गम्भीर बिमारियों से ग्रसित रहते हैं, शिशु मृत्यु दर चिन्ताजनक रूप से ऊँची है। सुरक्षा बलों द्वारा "नक्सल प्रभावित" बस्तर, दन्तेवाड़ा, सुकमा, बीजापुर, कांकेर के ग्रामीण लोगों की आम गतिविधियों से लेकर उनके रीति-रिवाज़ों तक हर चीज में दखल दिया जाता है। यही कारण है की ग्रामीण पूरी ताक़त लगाकर सुरक्षा बल के शिविरों की स्थापना का विरोध करते हैं।

इस बर्बर राजकीय हिंसा के पीछे असली कारक पूँजी की बेरोकटोक लूट है। विशाल भू-सम्पदा, खनिज-सम्पदा और वन-सम्पदा से भरपूर इस इलाक़े पर पूँजीपति वर्ग की गिद्ध नज़र सालों से है, जिसका ख़ामियाज़ा वहाँ की स्थानीय आबादी भुगत रही है। छत्तीसगढ़ कोयला, लौह अयस्क, और डोलोमइट जैसे खनिजों का प्रमुख उत्पादक है, जो भारत के कुल उत्पादन का क्रमशः लगभग 22.57 प्रतिशत, 22.8 प्रतिशत, 37.48 प्रतिशत हिस्सा है। यह भारत का एकमात्र राज्य है जहाँ टिन सान्द्रण का उत्पादन होता है, राज्य में भारत के टिन अयस्क भंडार का 35.4 प्रतिशत हिस्सा है। छत्तीसगढ़ सरकार ने समय-समय पर आर्सेलर, मित्तल, टाटा स्टील, कानसोलिडेटेड माइन्स, बी.एच.पी. मिलियन जैसे पूँजीपति समूहों को लूट की खुली छूट का मौका उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया है। इन तमाम कम्पनियाँ का हित साधन ग्रामीण आदिवासियों के बर्बर दमन के साथ वाबस्ता है। आदिवासियों के सैकड़ों गाँवों को उजाड़कर उस इलाक़े की अकूत प्राकृतिक सम्पदा देशी-विदेशी लुटेरों के हवाले करने का यह सारा खेल है।

पूँजी जब किसी देश के सामाजिक जीवन में प्रवेश करती है तो उसके किसी भी कोने को अछूता नहीं छोड़ती। वह रन्ध्र-रन्ध्र को बेध देती है और पोर-पोर में पैठ जाती है। आदिम संचय की यह प्रक्रिया भारतीय समाज में गत आधी सदी से जारी थी, पर विगत लगभग दो दशकों से इसकी गति अत्यधिक तेज़ रही है। जंगल-पहाड़ों तक पहुँचकर कच्चे माल के स्रोतों पर क़ब्ज़ा जमाते हुए, कारख़ाने खड़े करने के लिए ज़मीनें हथियाते हुए जिन आदिवासियों को ज़मीनों, जंगलों और पारम्परिक जीविका से एक झटके से उजाड़ा जा रहा है उनके प्रतिरोध को ही रोकने के लिए भारतीय पूँजीवादी राज्यसत्ता बड़े स्तर पर पूरे क्षेत्र का सैन्यकरण कर रही है और भीषण क़त्लेआम को अंजाम दे रही है। बस्तर की हालिया घटना एक बार फिर इसी बात को रेखांकित करती है।

इस राजकीय दमन के बरक्स जो राजनीतिक धारा दण्डकारण्य में प्रतिरोध का पर्याय बनी हुई है, वह दुस्साहसवाद के दलदल में धँसी हुई है। राजकीय दमन के ख़िलाफ़ लड़ने तथा सही क्रान्तिकारी जनदिशा के अभाव में उसे जनता के दबे-कुचले हिस्सों के बीच कुछ समर्थन भी प्राप्त है। हर किस्म का आतंकवाद – चाहे प्रतिक्रियावादी हो या क्रान्तिवादी (जैसे कि "वामपन्थी" दुस्साहसवाद), अपने दोनों ही रूपों में वह साम्राज्यवादी-पूँजीवादी राज्यसत्ताओं की अन्यायपूर्ण एवं दमनकारी नीतियों का नतीजा होता है, अथवा राजकीय आतंकवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप पैदा होता है। जब जनक्रान्ति की मनोगत ताक़तें कमज़ोर होती हैं और ठहराव और प्रतिक्रिया का माहौल होता है तो ऐसे में दिशाहीन विद्रोह और निराशा की एक अभिव्यक्ति दुस्साहसवादी राजनीति और विचारधारा के रूप में सामने आती है। अनेक आदिवासी इलाक़ों में आज यही हो रहा है।

ज़ाहिरा तौर पर इस राजकीय दमन का प्रतिरोध करने में जनदिशा के विपरीत आतंकवादी व दुस्साहसवादी राजनीति कभी सफल नहीं हो सकती और न ही इस ग़ैर-सर्वहारा वर्गीय राजनीति का समर्थन किया जा सकता है। लेकिन "आंतकवाद" और "नक्सलवाद" के नाम पर बस्तर व अन्य इलाक़ों में जनता के ख़िलाफ़ जारी राजकीय ख़ूनी युद्ध का पुरज़ोर विरोध करने की ज़रूरत है। "आतंकवाद" के नाम पर आज फ़र्ज़ी मुठभेड़, टॉर्चर और गिरफ़्तारियों का विरोध देश के हर इंसाफ़पसन्द नागरिक को करना ही चाहिए। सिलगर में फ़ायरिंग की घटना की तत्काल निष्पक्ष उच्च स्तरीय जाँच तथा दोषियों को सज़ा होनी चाहिए। साथ ही भारतीय राज्यसत्ता द्वारा आदिवासियों के जंगलों व ज़मीनों को जबरन हड़पने की साज़िशें तत्काल बन्द की जानी चाहिए।

पूँजीवादी किसान, पूँजीवादी ज़मींदार, आढ़तिये, व्यापारी और बिचौलिये किस तरह गाँव के ग़रीबों को लूटते हैं?

(पेज 8 से आगे)

श्रम का शोषण करने वाले पूँजीवादी किसान को मिलने वाले औसत मुनाफ़े से ऊपर का बेशी मुनाफ़ा होता है, जो कि पूँजीवादी भूस्वामी को मिलता है। लेकिन हम जानते हैं कि पूँजीवादी खेती में इस प्रकार के पिछड़े रूप भी पूँजीवादी लगान के साथ-साथ मौजूद रहते हैं।

इस प्रकार धनी पूँजीवादी कुलक व फ़ार्मर, आढ़तिये, सूदख़ोर और व्यापारी ग़रीब मेहनतकश किसानों को उद्यमी मुनाफ़े, सूद, लगान और व्यापारिक मुनाफ़े, सभी के ज़रिए लूटते-खसोटते हैं। यह लूट-खसोट सामाजिक उत्पीड़न के साथ भी जुड़ जाती है, क्योंकि अधिकांश ग़रीब मेहनतकश किसान दलित और तथाकथित निम्न जातियों से आते हैं, जबकि धनी कुलक व फ़ार्मर आम तौर पर उन मँझोली जातियों से आते हैं जो कि आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक तौर पर गाँवों में प्रभुत्वशाली हो चुकी हैं और साथ ही तथाकथित ऊँची जातियों से आते हैं।

इस शोषण और उत्पीड़न के ही कारण पिछले दो दशकों में क़रीब पौने दो करोड़ ग़रीब मेहनतकश किसान खेती से उजड़ चुके हैं और अर्द्धसर्वहारा से पूर्ण सर्वहारा में तब्दील हो चुके हैं। जब तक एक छोटी जोत उनके पास थी, तब भी उनकी आर्थिक हालत बेहद ख़राब थी और अब भी बेहद ख़राब है, लेकिन पूँजीवाद ने मालिक होने का वहम और मानसिकता उनके दिमाग़ से निकाल दिया है, जो कि एक छोटी जोत का स्वामी के कारण अक्सर उनके अन्दर पायी जाती थी।

इन पौने दो करोड़ ग़रीब मेहनतकश किसानों को खेती से उजाड़ने का काम किसने किया है? ग्रामीण पूँजीपति वर्ग ने, जिसमें पूँजीवादी कुलक व फ़ार्मर, पूँजीवादी ज़मींदार, आढ़तिये, व्यापारी, सूदख़ोर और बिचौलिये शामिल हैं और जो कि अक्सर एक ही व्यक्ति हुआ करते हैं। इनके द्वारा मुनाफ़े, सूद, लगान व व्यापारिक मुनाफ़े के रूप में मेहनतकश ग़रीब किसानों की लूट भारत में विकिसानीकरण व सर्वहाराकरण का सबसे बड़ा कारण है।

खेतिहर मज़दूरों की लूट सीधे तौर पर पूँजीवादी कुलकों व फ़ार्मरों के ज़रिए उजरती श्रम के शोषण के तौर पर होती है। इन खेतिहर मज़दूरों को भी सूदख़ोरी के ज़रिए भी लूटा जाता है, क्योंकि घर में शादी, किसी की बीमारी, किसी को बाहर भेजने आदि के लिए इन्हें जिस नक़दी की आवश्यकता होती है, वह इनके पास नहीं होती है। मज़दूरों की इस मजबूरी का फ़ायदा धनी किसान व कुलक खूब उठाते हैं और उन्हें बेहद ऊँची ब्याज दरों पर क़र्ज़ देकर लूटते हैं। इस लूट में सरकार भी मूक समर्थक होती है क्योंकि सरकारी संस्थागत ऋण तक इन ग़रीब मेहनतकश खेत मज़दूरों और ग़रीब किसानों की कोई पहुँच नहीं होती है। नतीजतन, गाँव के धनी किसानों-कुलकों-सूदखोरों पर इनकी निर्भरता सरकार जानबूझकर बनाये रखती है। और ये ही धनी किसान-कुलक अपनी राजनीतिक हनक का इस्तेमाल कर अक्सर ही अपने भारी-भरकम क़र्ज़ सरकार से माफ़ करवाते हैं, जो कि एक प्रकार जनता के धन का धनी किसानों-कुलकों द्वारा ग़बन है। लेकिन ये ख़ुद कभी ग़रीब किसानों व खेतिहर मज़दूरों का क़र्ज़ माफ़ नहीं करते और क़र्ज़ की अदायगी नहीं होने पर उनके खेत और यहाँ तक कि घर छीन लेने में भी कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। कई बार उनसे बँधुआ मज़दूरी करवाकर भी ये सूद की वसूली के नाम पर अति-मुनाफ़ा कमाते हैं।

जब खाद्यान्न के महँगे होने के ही कारण मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ने का दबाव पैदा होता है, तो ये ही धनी किसान-कुलक उनकी मज़दूरी पर 'कैप', यानी ऊपरी सीमा लगाने का काम भी करते हैं। इस समय पंजाब और हरियाणा में 'मज़दूर-किसान एकता' की बात करते हुए ये धनी किसान-कुलकों मज़दूरों की मज़दूरी पर कैप लगाने और उसे घटाने के फ़रमान अपनी जातीय पंचायतों द्वारा जारी कर रहे हैं। ये वही धनी किसान और कुलक हैं, जो कि खेती क़ानूनों के मसले पर मज़दूरों का समर्थन लेने के लिए 'मज़दूर-किसान एकता' का झाँसा दे रहे हैं!

मोदी सरकार के खेती क़ानूनों पर मज़दूर वर्ग का नज़रिया साफ़ होना चाहिए : **पहला और दूसरा क़ानून खेतिहर पूँजीपति वर्ग और कॉरपोरेट पूँजीपति वर्ग के बीच का अन्तरविरोध है और उसमें मज़दूर वर्ग और ग़रीब किसानों को किसी एक का पक्ष कतई नहीं चुनना चाहिए बल्कि अपनी स्वतंत्र अवस्थिति से दोनों का ही विरोध करना चाहिए क्योंकि पूँजीपति वर्ग के इन दो धड़ों के बीच झगड़ा ही इस बात का है कि गाँव के ग़रीब मेहनतकश किसानों और खेतिहर मज़दूरों को लूटने का विशेषाधिकार किसके पास हो।** धनी किसान व कुलक यह लड़ाई लाभकारी मूल्य को बचाने के लिए लड़ रहे हैं, जिसमें मज़दूरों और ग़रीब मेहनतकश किसानों का कोई हित नहीं है। उल्टे लाभकारी मूल्य से उनके हितों को हानि होती है क्योंकि इसकी वजह से भोजन महँगा होता है और उनकी वास्तविक मज़दूरी में कमी आती है। इसलिए पहले दो क़ानूनों पर चल रहे आन्दोलन में हमें कुलकों-धनी किसानों या बड़े पूँजीपति वर्ग का साथ नहीं देना चाहिए, बल्कि अपनी स्वतंत्र राजनीतिक ज़मीन से अपनी स्वतंत्र माँगों के लिए संघर्ष करना चाहिए। यानी कि उन माँगों पर संघर्ष करना चाहिए जो कि ग़रीब किसानों और मज़दूरों की स्वतंत्र माँगें हैं।

गाँवों में अपने ही शोषक-उत्पीड़क कुलक व धनी किसान वर्ग के शोषण करने के विशेषाधिकार को खेतिहर मज़दूर व ग़रीब किसान भला क्यों बचायेंगे? वे इस विशेषाधिकार को छीनने का प्रयास कर रहे बड़े पूँजीपति वर्ग का समर्थन क्यों करेंगे, जबकि इससे परिवर्तन सिर्फ़ यह होगा कि खेतिहर मज़दूरों व ग़रीब किसानों के लुटेरे बदल जायेंगे? ज़ाहिरा तौर पर मज़दूर और ग़रीब किसान लूट और शोषण के ख़िलाफ़ लड़ेंगे, चाहे वह धनी किसान व कुलक करें या फिर बड़ा पूँजीपति वर्ग। वे अपनी स्वतंत्र माँगों के लिए लड़ेंगे, मसलन खेती के क्षेत्र में सरकार द्वारा अधिसंरचना के विकास की माँग, जिसका लाभ ग़रीब और मँझोले किसानों को होगा, मज़दूरी बढ़ाने की माँग जिसका लाभ खेतिहर सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा को होगा, रोज़गार गारण्टी की माँग जिसका लाभ भी समूचे गाँव के ग़रीबों को होगा, धनी किसानों व कुलकों समेत समूचे पूँजीपति वर्ग पर विशेष टैक्स लगाकर लागत को कम करने की माँग जिसका लाभ विशेष तौर पर ग़रीब व मँझोले किसानों को होगा। यह आखिरी माँग भी केवल और केवल पूँजीपति वर्ग पर विशेष टैक्स लगाने की माँग के साथ ही उठायी जा सकती है क्योंकि उसके बिना इसका अर्थ होगा खेती में लगने वाले कच्चे मालों, मशीनरी, आदि के उत्पादन में लगे मज़दूरों की मज़दूरी को कम करना।

जहाँ तक तीसरे क़ानून यानी आवश्यक वस्तु क़ानून में संशोधन का प्रश्न है, मज़दूर वर्ग इसका स्पष्ट तौर पर विरोध करता है क्योंकि यह जनविरोधी क़दम है और व्यापारियों को कालाबाज़ारी और जमाख़ोरी का मौक़ा देता है।

स्पष्ट है कि **गाँवों का धनी किसान व कुलक कई रूपों में खेतिहर मज़दूरों और ग़रीब मेहनतकश किसानों को लूटता है, तबाह और बरबाद करता है। यह गाँवों में हमारा शत्रु वर्ग है। इसके साथ वर्ग सहयोग की नीति अपनाने वाले वास्तव में कुलकों और धनी किसानों के एजेण्ट हैं, जो कि मज़दूर आन्दोलन और कम्युनिस्ट आन्दोलन में घुसे हुए हैं।** ऐसी शक्तियों की कुलकपरस्त राजनीति को लगातार बेनक़ाब करना होगा, गाँव में अपने भाइयों-बहनों को यह समझाना होगा कि ऐसी शक्तियों से सावधान रहें जो कुलकों व धनी किसानों का समर्थन करने की बात कर रहे हैं, जो कि एक ही साथ आपकी मज़दूरी पर कैप लगा रहे हैं, आपको सूदख़ोरी और लगानख़ोरी से लूट रहे हैं और साथ ही 'मज़दूर-किसान एकता' का नारा देकर आपको ठगने का प्रयास कर रहे हैं। गाँवों में मज़दूरों व ग़रीब मेहनतकश किसानों के बीच यह क्रान्तिकारी प्रचार ही आज हमारा प्रमुख कार्य है।

फ़ासिस्टों के ख़ूनी इरादों को नाकाम करने के लिए एकजुट होकर उठ खड़ा होना होगा!

(पेज 1 से आगे)

के बजाए अपनी शेखी बघारने में लगा हुआ था। जनवरी में मोदी ने दावा किया कि हमने कोरोना को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर लिया है, और दुनिया को भी इसका मंत्र दे दिया है। पूरी भक्त मण्डली अपने साहब की वाहवाही में पगलाई हुई थी। इसके ठीक तीन महीने बाद, 23 अप्रैल को पिछले 24 घण्टों में सबसे अधिक मरीज़ों के मामले में भारत दुनिया में नम्बर एक बन गया था। और उसके बाद यह संख्या बढ़ती ही चली गयी।

केन्द्र सरकार को महामारी से निपटने के लिए ज़रूरी सलाह देने के लिए बनी कोविड-19 पर राष्ट्रीय वैज्ञानिक टास्कफ़ोर्स की फ़रवरी और मार्च के अहम महीनों में कोई बैठक तक नहीं की गयी। राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन अधिनियम के तहत गठित 11 दलों में से एक ने सरकार को दूसरी लहर के बाबत स्पष्ट चेतावनी दी थी और इसके बरक्स तैयारी के लिए विस्तृत सिफ़ारिशें की थी। इनमें सबसे ख़ास बात यह थी कि भारत तुरन्त 60,000 टन ऑक्सीजन का आयात करे और 150 ज़िला अस्पतालों को दुरुस्त करे। ख़ास तौर पर इन अस्पतालों में ऑक्सीजन की कमी को पूरा करने के लिए 162 प्रेशर स्विंग एब्सॉर्पशन संयंत्र लगाये जायें। इन संयंत्रों पर केवल 200 करोड़ रुपये की लागत आनी थी।

मगर ऐसे ज़रूरी क़दम उठाने के बजाय इन फ़ासिस्ट हत्यारों ने पाँच राज्यों में विधानसभा और उत्तर प्रदेश में पंचायत चुनाव, कुम्भ, और क्रिकेट मैच का तमाशा करवाकर इस महामारी को विकराल रूप लेने में अहम भूमिका निभाई।

मौत और बर्बादी का ऐसा ताण्डव मचाने के बाद भी ये फ़ासिस्ट ग़लती मानने के बजाय चोरी और सीनाज़ोरी वाले अन्दाज़ में झूठे दावे किये जा रहे हैं। लेकिन वे भी जानते हैं कि इस बार मौतों का जो सैलाब आया था उसने किसी को भी नहीं छोड़ा है। बड़ी संख्या में मोदीभक्त और भाजपा-संघ के समर्थक व कार्यकर्ता भी महामारी और सरकारी बदइन्तज़ामी का शिकार हुए हैं। ऐसे में उनके पास एकमात्र रास्ता है साम्प्रदायिकता के प्रेत को फिर से काम पर लगाना, जिसके वे पुराने माहिर हैं। पिछले कुछ दिनों की घटनाएँ आने वाले समय में इनके मंसूबों की ओर इशारा कर रही हैं।

नालायक योगी सरकार लोगों के लिए ऑक्सीजन, दवा, अस्पताल का इन्तज़ाम तो दूर, पार्थिव शरीरों का सम्मान सहित अन्तिम संस्कार तक करा पाने में नाकाम रही। यह बस अपने निकम्मेपन के सबूतों को छिपाने में ही लगी रही। इसके लिए कहीं श्मशान घाट को नज़रबन्द किया गया, कहीं शवों की फ़ोटो लेने पर रोक लगायी गयी, तो कहीं नदी किनारे रेत में दबाये शवों से कफ़न तक नोचवा लिये गये। ऑक्सीजन की कमी की बात करने वालों की सम्पत्ति ज़ब्त करने का फ़रमान जारी करने से लेकर अपनी शिकायतें लेकर गये डॉक्टरों पर एफ़आईआर कराने तक के काम करके भी योगी सरकार असन्तोष और विरोध के स्वरों को रोक नहीं पायी। ऐसे में देश के सबसे अधिक आबादी वाले प्रदेश का मुखिया अपने असली रंग में आ चुका है और खुलकर साम्प्रदायिक नफ़रत का खेल खेल रहा है। हाई कोर्ट के आदेश की अहवेलना करते हुए स्थानीय प्रशासन ने लखनऊ से लगे बाराबंकी ज़िले में ग़रीबनवाज़ अल महरूफ़ मस्जिद को बुलडोजर चलाकर ज़मींदोज कर दिया। स्थानीय लोगों के मुताबिक मस्जिद पिछले 100 सालों से खड़ी थी। मस्जिद गिराने के बाद पूरे इलाक़े में साम्प्रदायिक तनाव का माहौल बना हुआ है। उधर हरियाणा के गुड़गाँव ज़िले में 30 वर्षीय आसिफ़ का एक उन्मादी भीड़ ने क़त्ल कर दिया। अपने काम से वापस लौट रहे आसिफ को "जय श्री राम" का नारा लगाने के लिए बाध्य करते हुए मार दिया गया। एक बार फिर से धर्म के नाम पर लिंचिंग करने का काम किया जा रहा है। अब पूरे मेवात क्षेत्र में भड़काऊ वीडियो और पोस्ट के ज़रिए साम्प्रदायिक नफ़रत का माहौल गरमाया जा रहा है। ग़ाज़ियाबाद में एक बुज़ुर्ग को "जय श्री राम" बुलवाने के नाम पर घण्टों तक टॉर्चर किया गया, उनकी दाढ़ी काट दी गयी और जब इसका व्यापक विरोध होने लगा तो उल्टे अनेक मुस्लिमों और सामाजिक कार्यकर्ताओं पर ही "वैमनस्य फैलाने" का मुक़दमा दर्ज करा दिया गया।

जिस तरह पुराने ज़माने के राजा-महाराजा हर वक़्त युद्ध की तैयारियों में लगे रहते थे; चाहे जनता अकाल या बाढ़ से त्रस्त हो, सेनाएँ खड़ी करने के लिए उनकी वसूली चलती रहती थी, ठीक उसी तरह से **इन फ़ासिस्टों को हर क़ीमत पर चुनाव जीतने और सत्ता में बने रहने से ही मतलब होता है। सत्ता में बने रहने के लिए वे कुछ भी कर सकते हैं ताकि अपने पूँजीपति आक़ाओं की वे सेवा करते रह सकें और "हिन्दू राष्ट्र" के अपने विनाशकारी प्रोजेक्ट को आगे बढ़ा सकें।**

अब हमें और आपको यह तय करना है कि हम इनके ख़तरनाक मंसूबों को कामयाब होने देंगे, या इनके ख़ूनी इरादों को नाकाम करने के लिए एकजुट होकर उठ खड़े होंगे!

हरियाणा के मेवात में साम्प्रदायिक माहौल बिगाड़ने में लगे नफ़रत के सौदागर!

जारी है महापंचायतों का दौर, कहीं दूसरे मुज़फ़्फ़रनगर की तैयारी तो नहीं हो रही है?

– इन्द्रजीत

आपको पता होगा कि पिछली 16 मई को खेड़ा खलीलपुर, नूह जिला मेवात (हरियाणा) के रहने वाले 27 वर्षीय युवक आसिफ़ खान की तक़रीबन 20 लोगों के समूह के द्वारा पीट-पीटकर हत्या कर दी गयी थी। अन्तिम जानकारी के अनुसार पुलिस के द्वारा इस मामले में 16 नामज़द समेत 20 पर एफआईआर दर्ज की गयी है और 8 हत्यारोपियों को गिरफ्तार किया है। इनमें से 7-8 हत्यारोपी आसिफ़ के गाँव के ही हैं तथा उनका सम्बन्ध भाजपा और संघ परिवार से बताया जा रहा है।

फ़िलहाल मेवात की स्थिति चिन्ताजनक बनी हुई है। यूट्यूब और सोशल मीडिया पर वीडियो डाल-डाल कर मेवात के सामाजिक ताने-बाने में ज़हर घोला जा रहा है। अपराधी-लम्पट-गुण्डा गिरोहों के द्वारा सरेआम भड़काऊ बयान और धमकियाँ दी जा रही हैं। भीड़ के "पौरुष" को ललकारा जा रहा है और पुलिस प्रशासन किसी अनहोनी के इन्तजार में ठोस कार्रवाई करने की बजाय चुप्पी साधे बैठा हुआ है। संघ और भाजपा समर्थक तत्त्व हत्यारोपियों को निर्दोष बता रहे हैं तथा बड़ी-बड़ी "महापंचायतों" के माध्यम से हज़ारों लोगों की भीड़ इकट्ठी कर रहे हैं। इनमें करनी सेना से जुड़ा सूरज पाल अम्मू, भारत माता वाहिनी का चीफ़ दिनेश ठाकुर, पलवल भाजपा आईटी सेल का अध्यक्ष सुनील, भारतीय किसान संघ का हरियाणा का अध्यक्ष ओम सिंह चौहान, बिट्टू बजरंगी, जुनैद हत्याकाण्ड का मुख्या आरोपी नरेश कुमार समेत बहुत से फ़ासिस्ट तत्त्व पहुँच रहे हैं। इसके अलावा हत्यारोपियों के समर्थन में लोनी भाजपा विधायक नन्द किशोर गुर्जर, जामिया के छात्रों पर गोली चलाने वाला कपिल गुर्जर समेत बहुत से लोगों ने ज़हर उगला है। अभी हरियाणा में कोरोना की बन्दिशें जारी हैं इसके बावजूद इतनी बड़ी-बड़ी तथाकथित महापंचायतों का आयोजन सरकार और प्रशासन की शह पर ही सम्भव है।

संघ और भाजपा के लोग और समर्थक साम्प्रदायिक तत्त्वों, बलात्कारियों और हत्यारों के समर्थन में पूरी मुश्तैदी से जुट जाते हैं। मेवात में भी कुछ अविश्वसनीय नहीं हो रहा है। कठुआ, दादरी, बुलन्दशहर, उन्नाव, मुजफ्फरनगर से लेकर देश भर में हमें यही चीज़ दिखायी दी थी। यही नहीं दंगाइयों-बलात्कारियों के गलों में फूल मालाएँ डालते हुए भी संघी-भाजपाई ही पाये जाते हैं। हरियाणा के पुलिस प्रशासन को चाहिए कि बाकी बचे हत्यारोपियों को भी तुरन्त प्रभाव से गिरफ्तार करे और उनको सख्त सजा दिया जाना सुनिश्चित करे। साम्प्रदायिक तत्त्वों की मेवात का माहौल ख़राब करने की कोशिश पर तुरन्त लगाम लगाये। हालाँकि इसकी उम्मीद कम ही है।

मेवात की हिन्दू-मुस्लिम जनता को आपसी भाईचारा और जुझारू एकजुटता बनाकर साम्प्रदायिक माहौल का मुक़ाबला करना चाहिए। मेवात में जनता के भाईचारे को पलीता लगाने का काम मुख्य तौर पर संघ-भाजपा और तमाम हिन्दुत्ववादी संगठन कर रहे हैं। इसके अलावा कुछ अस्मितावादी और साम्प्रदायिक राजनीति करने वाले ओवैसी जैसों के चेले-चपाटे भी इस काम में संघियों को अप्रत्यक्ष तौर पर सहयोग दे रहे हैं। मेवात हरियाणा-राजस्थान के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में से एक है। पढ़ाई-लिखाई और रोज़ी-रोज़गार का यहाँ भट्टा गोल है। इसके बावजूद भी साम्प्रदायिक तत्त्वों की दाल यहाँ आसानी से गल रही है। मेवात के शिक्षित युवाओं और प्रबुद्ध नागरिकों की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि साम्प्रदायिक अलगाव की खाई को पाटा जाये। हमें साम्प्रदायिक सद्भाव के साथ-साथ अमन कमेटियों का गठन भी करना चाहिए। ये अमन कमेटियाँ न केवल मेहनतकश हिन्दू-मुसलमान जनता के बीच शान्ति-भाईचारे के लिए काम करें बल्कि दंगाई भीड़ के ख़िलाफ़ भी जुझारू तरीके से दीवार बनकर खाड़ी हो जायें ताकि मेवात में अमन-चैन को सुनिश्चित किया जा सके। मेवात क्षेत्र के अन्दर साम्प्रदायिक तत्त्वों का मुक़ाबला मेहनतकश जनता की वर्ग-एकजुटता के दम पर ही किया जा सकता है।

आज मेवात में हो रही ये महापंचायतें हमें एक और चीज़ की याद दिलाती हैं। वह चीज़ है 2013 में पश्चिमी उत्तरप्रदेश में भड़काये गये साम्प्रदायिक दंगे। तब भी गाँवों में ऐसी ही बड़ी-बड़ी तथाकथित महापंचायतों का आयोजन किया गया था जिनमें भाजपा और संघ परिवार के लोगों ने खुलकर ज़हर उगला था। और इसका परिणाम भी हमने देख लिया था। आज किसान आन्दोलन का चेहरा बने टिकैत बन्धु भी तब मुस्लिम विरोधी माहौल बनाने के लिए खुलकर खेल रहे थे।

जिन लोगों को यह लगता है कि मौजूदा किसान आन्दोलन का चरित्र फ़ासीवाद विरोधी है और किसान आन्दोलन के कारण ग्रामीण किसान आबादी आरएसएस और हिन्दुत्ववादी ताक़तों के ख़िलाफ़ हो गयी है, वे सिर्फ़ मुगालते में जी रहे हैं और खुद को व जनता के हितों को धोखा दे रहे हैं। मेवात में तथाकथित महापंचायतों में दरी पर बैठने वाली बड़ी आबादी खेती-किसानी से जुड़ी आबादी ही तो है जिसे तमाम फ़ासीवादी तौर-तरीकों से भड़काया जा रहा है और जिसके सामने नकली दुश्मन को खड़ा किया जा रहा है।

फ़ासीवाद मुनाफ़े की गिरती दर के दौर में संकटग्रस्त पूँजीवादी व्यवस्था की एक परिघटना है। फ़ासीवादी ताक़तें पूँजीपति वर्ग के सबसे प्रतिक्रियावादी हिस्सों की नुमाइन्दगी करती हैं। यह टुटपूँजिया वर्गों का एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन होता है। लोगों की निम्नचेतना, जड़ता, पुरातनपंथी सोच और तर्क-विवेकहीनता फ़ासीवादी विचारधारा के लिए मुफ़ीद ज़मीन मुहैया कराते है।

उच्च जातियों की तथाकथित महापंचायतों और खाप पंचायतों के कर्ता-धर्ता असल में खुद ग्रामीण शासक वर्ग होते हैं या इसके अनौपचारिक प्रतिनिधि होते हैं। गाँव के धनिक वर्ग द्वारा जुटायी जाने वाली तथाकथित महापंचायतें एक ओर एमएसपी जैसी जनविरोधी माँग पर धनी किसान आन्दोलन के साथ हैं तो दूसरी ओर इनका साम्प्रदायिक और पुरातनपन्थी चरित्र भी किसी से छुपा हुआ नहीं है। हरियाणा के गठवाला खाप के प्रतिनिधि रहे दादा बलजीत मलिक तो भाजपा की टिकट पर चुनाव भी लड़ चुके हैं।

धनी किसानों का अवसरवादी नेतृत्व एकदम साफ़ नज़र है कि उसे भाजपा-आरएसएस और फ़ासीवाद से कोई मतलब नहीं उसे सिर्फ़ अपना अतिरिक्त मुनाफ़ा या एमएसपी की गारण्टी चाहिए। आम गरीब किसान आबादी को ऐतिहासिक विरासत के तौर पर साम्प्रदायिक और जातिवादी मानस मिले ही हुए हैं। और इसी चीज़ का फ़ायदा तमाम अवसरवादी तत्त्व और फ़ासीवादी शक्तियाँ उठाती रही हैं। इस सच को स्वीकार करने की बजाय कुछ "यथार्थवादी" लोग भी आन्दोलन के चरित्र की मनमुआफ़िक व्याख्या करने में लगे हैं।

मौजूदा किसान आन्दोलन के फ़ासीवाद विरोधी होने के सच को हमने तब भी देख भी लिया था जब ग़ाज़ीपुर धरने से जामिया के छात्रों को धक्के देकर भगा दिया गया था और उनके ख़िलाफ़ पुलिस को बुला लिया गया था! जब कुछ जनवादी चरित्र रखने वाली किसान यूनियन उगराहां ने राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के लिए प्रदर्शन किया तो बाकी के पूरे नेतृत्व ने कार्यक्रम से खुद को अलग करके जोगिन्द्र सिंह उगराहां को कैसे जात बाहर कर दिया था!

भारत में फ़ासीवाद का मुकाबला वर्ग आधारित जनता की फ़ौलादी एकजुटता के दम पर ही किया जा सकता है। महज़ आर्थिक माँगों के लिए संगठित टुटपूँजिया वर्गों के आन्दोलन से फ़ासीवाद को ज़्यादा परेशानी नहीं होगी। झूठी उम्मीद रखना नाउम्मीद होने से भी ख़तरनाक होता है।

असली मुद्दों से ध्यान भटकाने में लगे संघियों के झूठे और ज़हरीले प्रचार का पर्दाफ़ाश करना होगा!

– भारत

कोरोना की दूसरी लहर ने जो क़त्लेआम मचाया है, यह हम सब जानते हैं। इन्सानों को मौत के आँकड़ों में तब्दील करने में फ़ासीवादी मोदी सरकार ने सबसे बड़ा योगदान दिया। जहाँ एक तरफ़ स्वास्थ्य व्यवस्था चरमरा रही थी, वहीं दूसरी तरफ़ सरकार चुनाव लड़ने में मस्त थी। कोरोना वायरस से पूरे देश में सरकारी आँकड़ों के हिसाब से अब तक 3.5 लाख मौतें हो चुकी हैं। पर असल आँकड़ा इससे कहीं ज़्यादा है यह जगज़ाहिर है। श्मशान में ही लाशों को कई घण्टों तक इन्तज़ार करना पड़ रहा था। कई रिपोर्टें भी बताती है कि एक श्मशान में जहाँ एक दिन में सैकड़ों शव जलाये जा रहे थे, पर वहीं सरकारी आँकड़ों में मौत की संख्या 10-12 ही होती थी। गंगा में बह रही लाशें असल सच्चाई बता रही हैं कि स्थिति कितनी भयंकर हो गयी हैं। एक बड़ी आबादी जिन्हें बचाया जा सकता था, उन्हें ऑक्सीजन दवाइयों की कमी के कारण मरना पड़ा। साफ़ है यह हालात सिर्फ़ महामारी के कारण उत्पन्न नहीं हुए, बल्कि इस फ़ासीवादी निजाम द्वारा बरती गयी बर्बर लापरवाही का परिणाम है।

इसी कारण आम जनता में भी सरकार के ख़िलाफ़ ग़ुस्सा है। यही वजह है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर.एस.एस.) भी अपनी सरकार की इस नाकामी पर पर्दा डालने के लिए पूरी ताक़त से लगा हुआ है। संघ अब अपने शैतानी शापित शाखाओं के माध्यम से और सारे मीडिया तंत्र का इस्तेमाल करके ध्यान भटकाने के लिए साम्प्रदायिक प्रचार, लिंचिंग जैसे मुद्दों को फिर उठा रहा है।

देश को मौत की घाटी में तब्दील करके संघ इस समय सबको "सकारात्मक" रहने का सन्देश दे रहा है। इसी को लेकर इन्होंने अभियान की शुरुआत की जिसमें जग्गी वासुदेव, रविशंकर जैसे और भी ठग शामिल हुए। साथ ही गोदी मीडिया के माध्यम से भी इस हत्यारों ने 'सकारात्मकता' को बड़े स्तर पर फैलाया। याद ही होगा कि पिछले साल जब करोड़ों मज़दूर भूखे-प्यासे हज़ारों किलोमीटर चले थे और सरकार ने भी उनके लिए कोई इन्तज़ाम नहीं किया था, तब ये गोदी मीडिया तब्लीगी जमात का मुद्दा खड़ा कर रहा था। ठीक उसी तर्ज़ पर चलते हुए इस बार भी गोदी मीडिया आर.एस.एस की 'पॉजिटिविटी' के धुन अलाप रहा है। ज़ाहिर है इनसे और कोई उम्मीद भी नहीं की जा सकती।

इस समय सक्रिय तरीक़े से संघ का आईटी सेल भी बड़े स्तर पर अफ़वाहें फैलाने से लेकर तमाम झूठे मुद्दों को प्रचारित कर सरकार की नाकामी छुपाने में लगा है। इनके द्वारा फैलायी एक अफ़वाह ने तूल पकड़ा कि एक बूढ़े आर.एस.एस के कार्यकर्ता ने अस्पताल में किसी युवा के लिए अपना बेड छोड़ दिया। बड़े-बड़े टीवी चैनल से लेकर हर जगह यह ख़बर प्रसारित की गयी और आर.एस.एस को आदर्श के रूप में पेश किया गया। परन्तु अन्ततः यह संघ द्वारा फैलाया गया झूठ ही निकला और उनकी ये 'आदर्श' गाथा धरी की धरी रह गयी। उसी अस्पताल के कर्मचारियों ने बताया कि ऐसी कोई घटना नहीं हुई, बल्कि उस दिन तो अस्पताल में कई बेड ख़ाली थे।

ये तिलचट्टे संघी कोरोना की वैक्सीन की कमी को भी नकार रहे हैं और कह रहे हैं कि जनसंख्या इतनी है कि सबके लिये वैक्सीन लगाना या स्वास्थ्य सुरक्षा मुहैया कराना सम्भव भी नही है। गंगा को माँ बोलने वाले ये संघी, गंगा में तैर रही लाशों पर चुप्पी साधे बैठे हैं और इन्हीं का फ़ासिस्ट चेला योगी निर्लज्जता के साथ गंगा के पास दबी लाशों से कफ़न उतरवा रहा है, ताकि सच्चाई छुपायी जा सके। दूसरी तरफ़ संघ के प्रमुख मोहन भागवत का कहना है कि यह सरकार को दोष देने का समय नहीं है। उसने तो यह भी कहा है कि जो लोग दवा और ऑक्सीजन के बिना मर गये, वे "मुक्त" हो गये। आई.टी सेल के माध्यम से ये लोग राष्ट्रवाद, लव-जिहाद, जनसंख्या नियंत्रण, जाति-धर्म के नाम पर ज़हर फैलाने का काम निरन्तर कर रहे हैं ताकि असल मुद्दों से हमारा ध्यान भटक सके। पूरा का पूरा गोदी मीडिया इनके झूठ को फैलाने में दिनो-रात जुटा हुआ है। इसके अलावा, संघी कार्यकर्ता और अन्धभक्त लोगों में तरह-तरह का झूठा और ज़हरीला प्रचार कर रहे हैं।

इसी के साथ फ़ासिस्ट अपने प्रिय काम, यानी दंगे करवाने में भी योजनाबद्ध ढंग से लगे हुए हैं। इसी की एक बानगी हरियाणा के मेवात में दिखी जहाँ विगत 16 मई को 27 वर्षीय युवक आसिफ़ खान की तक़रीबन 20 लोगों के समूह ने पीट-पीटकर हत्या कर दी। मेवात की स्थिति चिन्ताजनक बनी हुई है। यूट्यूब और सोशल मीडिया पर वीडियो डाल-डाल कर मेवात के सामाजिक ताने-बाने में ज़हर घोला जा रहा है। अपराधी-लम्पट-गुण्डा गिरोहों के द्वारा सरेआम भड़काऊ बयान और धमकियाँ दी जा रही हैं। आज ऐसे ही दंगों की इन फ़ासिस्टों को ज़रूरत है, ताकि जो कोरोना में जो नरसंहार इन्होंने किया है, उस पर से जनता का ध्यान हट जाये और इससे उपजे ग़ुस्से को दंगों की तरफ़ मोड़ दिया जाये।

कोरोना संकट ने पहले से ही संकट में फँसी पूँजीवादी व्यवस्था के संकट को और गहरा कर दिया है, इसलिये पूँजीपति वर्ग ने अपने ज़ंजीर से बँधे अपने कुत्ते को खूँखार तरीक़े से सबको रौंदने के लिये कह दिया है। दिल्ली दंगों के सफल आयोजन के बाद ये फ़ासीवादी अब पूरे देश को दंगों की आग में झोंक सकते हैं। सत्ता में बने रहने के लिए ये कुछ भी कर सकते हैं। इसीलिए सकारात्मकता के प्रचार के पीछे लिंचिंग और दंगों की योजनाएँ बनायी जा रही हैं।

इनके ज़हरीले प्रचार की असलियत को पहचानकर उसे नंगा करना होगा वरना फ़ासिस्ट अपराधियों का यह गिरोह देश को ख़ून के दलदल में धँसा देगा। लोगों की जान का इनके लिए क्या महत्व है, यह तो इन्होंने पिछले डेढ़ साल में अच्छी तरह दिखा दिया है।

जो सच-सच बोलेंगे, मारे जायेंगे!

– सार्थक

भारत में अप्रैल और मई के महीनों में कोरोना महामारी का जो ताण्डव चला वह देश के इतिहास में सबसे बड़ी त्रासदियों में से एक के रूप में दर्ज किया जायेगा। इस महामारी को एक त्रासदी बनाने में देश की फ़ासीवादी भाजपा सरकार, उसके मंत्रियों और चेले-चपाटों की घोर मानवद्रोही भूमिका भी इतिहास के पन्नों पर ख़ूनी अक्षरों में लिखी जायेगी। इनकी एक-एक करतूत और अपराध का समय आने पर गिन-गिन कर हिसाब लिया जायेगा, सब याद रखा जायेगा। मौत की इस विभीषिका ने हमसे हमारे प्रियजन हमारे दोस्त छीन लिये और पूरा देश शोक में डूब गया।

लेकिन इस भीषण संकट काल में लोगों ने जब सरकार के सामने अपने प्रियजनों की हिफाज़त की गुहार लगायी और सरकार को उसकी ज़िम्मेदारी और जवाबदेही की याद दिलायी तो उनकी मदद करने की जगह सरकार ने क्या किया, वह जग ज़ाहिर है। सरकार ने कहा कि ऐसी कोई भी माँग सरकार-विरोधी गतिविधि मानी जायेगी और ऐसी बात करने वालों पर कार्रवाई की जायेगी। जब हर रोज़ सरकारी आँकड़ों के हिसाब से चार हज़ार से ज़्यादा और ग़ैरसरकारी स्रोतों के हिसाब से बीस से चालीस हज़ार लोग मौत के घाट उतर रहे थे, उस वक़्त सरकार स्वास्थ्य व्यवस्था को दुरुस्त करके, ऑक्सीजन, वेण्टिलेटर, वैक्सीन और अन्य जीवनरक्षक दवाओं का इन्तज़ाम करने की जगह इनकी माँग करने वालों और सरकार की आलोचना करने वालों को डराने, धमकाने और गिरफ़्तारियों से उनका मुँह बन्द करने में व्यस्त थी।

अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में उत्तर प्रदेश में योगी सरकार ने यह फ़रमान जारी किया कि अगर कोई भी व्यक्ति, संस्थान या अस्पताल ऑक्सीजन की कमी के बारे में शिकायत करता है तो उस पर क़ानूनी कार्रवाई होगी। इतना ही नहीं उनपर एनएसए (राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम) जैसे काले क़ानून लगाये जायेंगे और उनकी सम्पत्ति भी ज़ब्त कर ली जायेगी। काले क़ानून लगाकर सम्पत्ति हड़पने में तो यूपी सरकार को महारत हासिल है। वर्दी वाले लठैत की तरह यूपी सरकार आम लोगों और अस्पतालों पर मुक़दमा ठोंक रही है, गिरफ़्तारियाँ कर रही है।

यूपी सरकार की इस ज़्यादती का पहला शिकार बने अमेठी के शशांक यादव जिनका अपराध बस इतना था कि उन्होंने ट्विटर पर अपने दादाजी के लिए ऑक्सीजन सिलेण्डर की ज़रूरत के बारे में लिखा। यूपी के कई शहरों में घण्टों इन्तज़ार करने के बाद अस्पतालों में ऑक्सीजन नहीं होने पर मरीज़ों के परिजन कहीं से ऑक्सीजन सिलेण्डर का बन्दोबस्त कर लेते तो रास्ते में उन्हें पुलिस रोककर उनसे सिलेण्डर ज़ब्त कर लेती और उन पर कालाबाज़ारी का आरोप लगा देती। जहाँ ऑक्सीजन, वैक्सीन और दवाइयों पर असली जमाख़ोरी और कालाबाज़ारी करने वाले बड़े बड़े खिलाड़ी खुले घूम रहे हैं वहीं फ़ासीवादी सरकार आम मेहनतकश जनता को मात्र एक सिलेण्डर लाने पर जमाख़ोरी के आरोप में गिरफ़्तार कर रही थी। दूसरी ओर, दिल्ली, पटना, बेंगलोर से लेकर मुम्बई तक भाजपा सांसद, विधायक और छुटभैये संघी नेता दवाइयों की कालाबाज़ारी, एम्बुलेन्स की जमाख़ोरी में लगे थे। आपदा को इन संघियों ने ही अवसर में बदला है। पूर्वी दिल्ली के भाजपा सांसद गौतम गम्भीर कोरोना के इलाज में इस्तेमाल होने वाली एक ज़रूरी दवाई की जमाख़ोरी करते हुए पाये गये। इन कफ़नखसोटों, नर पिशाचों की गिरफ़्तारी तो दूर कोई नोटिस तक जारी नहीं हुआ। लेकिन आँकड़ों को ढँकने और सच्चाई को छुपाने के लिए योगी सरकार ने पूरी बाज़ीगरी कर डाली। योगी ने अपने ज़हरीले दिमाग़ का पूरा इस्तेमाल करते हुए लखनऊ के श्मशान पर जलती दर्जनों लाशों को जनसाधारण की निगाह से छुपाने के लिए रातों रात ऊँची-ऊँची टिन की दीवारें खड़ी कर दीं।

करोड़ों का सूट पहनने वाले फ़क़ीर साहब को सवाल उठाना, आईना दिखाना और कमियाँ इंगित करना बिल्कुल नापसन्द है। इसलिए पूरे विश्व में एक मात्र भारत सरकार है जिसने पूरे कोरोना काल में एक भी प्रेस कॉन्फ्रेन्स नहीं की है। सच बात तो यह है कि मोदी ने 2014 से अब तक सत्ता में रहते हुए एक भी प्रेस कॉन्फ्रेन्स नहीं की है। पूरे देश की जनता गुहार लगाती रही, ऑक्सीजन, दवाइयों और अस्पतालों के लिए, मगर मोदी-शाह व्यस्त थे बंगाल की चुनावी रैलियों में।

मई महीने में ही दिल्ली पुलिस ने सुल्तानपुरी और मंगोलपुरी इलाक़े में रहने वाले 25 युवा मेहनतकशों को दीवारों पर पोस्टर लगाने के आरोप में गिरफ़्तार किया। आश्चर्य मत कीजिए! गिरफ़्तारी सिर्फ पोस्टर चिपकाने के लिए भी हो सकती है क्योंकि जब से मोदी सरकार आयी है गिरफ़्तारियों की क़ानूनी व्याख्या बदल गयी है। बस इतना काफ़ी है कि सरकार की आप आलोचना कीजिये और तैयार रहिये गिरफ़्तारी के लिए। इन नौजवानों का गुनाह बस इतना था कि वे ऐसे पोस्टर लगा रहे थे जिन पर लिखा था कि **"मोदी जी हमारे बच्चों की वैक्सीन विदेश क्यों भेज दी?"** इनमें से ज़्यादातर नौजवान दिहाड़ी मज़दूरी करते हैं, ऑटो चालक हैं या रेहड़ी-खोमचे लगाते हैं और इसी तरह मेहनत करके किसी तरह से अपने परिवार का पेट पालते हैं। जैसा अक्सर होता है जब आम मेहनतकश आबादी बिना किसी राजनीतिक पहचान के काम करती है तो उनके नाम पर सारी चुनावबाज़ पार्टियाँ नाम कमाने के लिए मक्खी की तरह भिनभिनाती हैं। इस बार भी ऐसा ही हुआ। इनकी गिरफ़्तारी के बाद आम आदमी पार्टी ने बयान दिया कि आम आदमी पार्टी के कहने पर पोस्टर लगवाये गये थे। सोशल मीडिया और टीवी पर यह बात ज़ोर-शोर से एक-दो दिनों तक लाइक-शेयर-रिट्वीट होती रही। इसके बाद पैसा हज़म तमाशा ख़त्म। न ही इन नौजवानों से पार्टी ने कोई सम्पर्क किया और न ही उन्हें कोई आर्थिक या क़ानूनी मदद दी। मतलब इन नौजवानों को बड़े साहेब और उनकी पूरी आदमख़ोर पुलिस और नरभक्षी न्यायपालिका के सामने अकेला छोड़ दिया गया।

कोरोना की इस दूसरी लहर के दौरान देश भर से इस क़िस्म के

पुलिसिया दमन की ख़बरें आम बात बन गयी है। एक तो गोदी मीडिया है ही भाड़े की टट्टू, दूसरे भाजपा के आईटी सेल के दो-दो रुपये वाले ट्रोल सोशल मीडिया पर झूठ फैलाते रहते हैं। महामारी के दौरान सरकार की भयंकर लापरवाही के बारे में बात करने वाले अनेक पत्रकारों, कार्टूनिस्टों, कलाकारों, कवियों और बुद्धिजीवियों के सोशल मीडिया अकाउण्ट बन्द कर दिये गये और उन पर कई मुक़दमे दर्ज किये गये। हाल ही में मणिपुर के दो जनपक्षधर पत्रकारों, किशोरचन्द्र वांगखेम और इरेन्द्र लेईचोम्बम को राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून के अन्तर्गत गिरफ़्तार कर लिया गया। इनका कसूर बहुत बड़ा था, इन्होंने फ़ेसबुक पर गोबर और गौमूत्र को कोरोना का इलाज़ बताये जाने पर कुछ व्यंग्य किया था।

साथ ही हम नहीं भूल सकते इस बात को कि पिछले साथ भारत में कोरोना की वजह से पूर्ण लॉकडाउन के दौरान भी किस प्रकार यह सरकार चुन-चुन कर राजनीतिक कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार कर रही थी। इस वर्ष तो इन्होंने जो किया है उसके बारे में कहा जा सकता है कि यदि नरभक्षियों और प्रेतों का कोई पदसोपानक्रम होता होगा तो उसमें भाजपा सरकार सबसे ऊपर रहेगी। राजनीतिक क़ैदी कोई अपराधी नहीं होते हैं, वे या तो सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक या मानवाधिकार कार्यकर्ता हैं या तो बुद्धिजीवी, छात्र या पत्रकार हैं। इनका भी कसूर बस इतना ही है कि इन्होंने जनता के साथ उनके संघर्षों में डटकर साथ दिया और सरकार की जनविरोधी नीतियों का मुखर विरोध किया। जेलों में कोरोना के तेज़ी से फैलने की आशंका को ध्यान में रखते हुए पिछले साल से ही देशभर के तमाम न्यायपसन्द नागरिक और संगठन इन राजनीतिक क़ैदियों की तत्काल रिहाई की माँग कर रहे थे, मगर सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। या यूँ कहें कि सरकार इन्तज़ार ही कर रही थी कि ये सारे राजनीतिक क़ैदी कोरोना की चपेट में आ जायें। यही हुआ। एक के बाद एक कई राजनीतिक क़ैदी दूसरी लहर के दौरान कोरोना की चपेट में आ गये। भीमा-कोरेगाँव के झूठे मुक़दमे में यूएपीए के तहत गिरफ़्तार किये गये स्टैन स्वामी, हैनी बाबू, महेश राउत, सागर गोरखे, रमेश गायचोर, ज्योति जगताप कोरोना के चपेट में आ गये। पिछले साल के दिल्ली दंगों के झूठे आरोप में गिरफ़्तार किये गये उमर खालिद, हाथरस बलात्कार घटना की रिपोर्टिंग करने वाले सिद्दीक कप्पन भी कोरोना की चपेट में आ गये हैं।

भारत की जेलों की स्थिति किसी से छुपी नहीं है। स्वच्छता, पौष्टिक आहार और बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव में और ठसा-ठस भरे होने की वजह से जेलों में बीमार काफ़ी जल्दी बढ़ती है। बेहतर इलाज पाने के लिए जब इन लोगों ने जमानत की याचिका दाखिल की तो सभी अदालतों ने इसे ठुकरा दिया और जेल के अन्दर ही एक अलग कमरे में इलाज करने के लिए कहा। कोरोना और ब्लैक फ़ंगस से संक्रमित होने के बाद हैनी बाबू के आँखों में काफ़ी सूजन आ गयी। एक हफ़्ते तक मिन्नतें करने के बाद अदालत ने उन्हें अस्पताल भेजने की आज्ञा दी। इस दौरान उनकी सूजन इतनी बढ़ गयी कि उनकी एक आँख की रोशनी लगभग चली गयी। जेल में कोई दवाई तो दूर, उन्हें साफ़ पानी या तौलिया भी नहीं नसीब हुआ। सबसे दयनीय अवस्था 84 साल के स्टैन स्वामी की है जो लम्बे समय से पार्किन्सन बीमारी से पीड़ित हैं जिसकी वजह से वे अब चलने फिरने, खाना खाने और नहाने जैसे रोज़मर्रा के काम भी ख़ुद नहीं कर सकते। जेल में अपने साथियों के सहारे ही वे अपने रोज़मर्रा के काम करते हैं। कोरोना से पीड़ित होकर अलग रहते हुए उनकी क्या हालत हो रही होगी, यह सोचना भी कठिन है। महाराष्ट्र सरकार के इस रवैये से यह साफ़ हो जाता है कि फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ हमारी लड़ाई में शिवसेना, कांग्रेस आदि कोई भी पूँजीवादी पार्टियाँ जनता के पक्ष में खड़ी नहीं हैं और कभी खड़ी हो भी नहीं सकतीं। इसके अलावा सिद्दीक कप्पन को अस्पताल में जानवरों की तरह खाट से बाँधकर रखने की भी ख़बर भी सामने आयी है।

पिछले साल सीएए और एनआरसी आन्दोलन में दिल्ली की महिलाओं के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर संघर्ष करने वाली जेएनयू की छात्रा नताशा नरवाल को भी दिल्ली दंगों के झूठे आरोप में गिरफ़्तार कर लिया गया था। पिछले महीने नताशा के पिता महावीर नरवाल कोरोना से संक्रमित होने के बाद कई दिनों तक अस्पताल में पड़े रहे जिस दौरान नताशा अदालत के सामने ज़मानत की अर्जी देती रही। आखिरकार जब नताशा के पिता की मृत्यु हो जाने के बाद ही उसे ज़मानत दी गयी। इस मानवद्रोही न्याय व्यवस्था को यह मंज़ूर नहीं था कि एक बेटी अपने पिता की ज़िन्दगी के आख़िरी वक़्त को उनकी सेवा करते हुए उनके साथ बिता सके। दूसरी ओर हत्या, बलात्कार और दंगों के आरोपी, छँटे हुए अपराधी गुरमीत राम रहीम को पिछले महीने तीन बार जेल से बाहर जाने की अनुमति मिली और जब वह कोरोना से संक्रमित हुआ तो उसे हरियाणा के सबसे बड़े निजी अस्पताल में भर्ती किया गया। इतना ही नहीं उसके सम्बन्धियों को उससे मिलने की अनुमति दे दी गयी। इससे साफ़ दिखता है की सरकार के इशारों पर नाचने वाली पुलिस और न्याय व्यवस्था जनता और जनता के न्यायपूर्ण अधिकारों की आवाज़ बुलन्द करने वालों की दुश्मन है। सरकार के तलवे चाटने वाले ये लोग सरकार की जी हुज़ूरी करते हैं।

कोरोना काल में सरकार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वालों के साथ सरकार क्या कर रही है यह जगज़ाहिर है लेकिन सरकारी दमन और आतंक लोगों की ज़ुबान बन्द नहीं कर सकते। हज़ारों और लाखों की संख्या में जब लोग सड़कों पर उतरेंगे तो जेलों में सबको बन्द करने की जगह नहीं होगी।

लक्षद्वीप : देश के सबसे शान्त इलाक़ों में से एक को अशान्त और अस्थिर करने में जुटे संघ और भाजपा

– केशव आनन्द

केन्द्र में भाजपा के सत्तासीन होने के बाद आर.एस.एस. हर जगह अपना साम्प्रदायिक एजेण्डा लागू करने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ रहा है। इसी कड़ी में मोदी सरकार का अगला निशाना लक्षद्वीप है। लक्षद्वीप में विकास और बदलाव के नाम पर तानाशाही का नया फ़रमान गढ़ा जा रहा है। फ़ासीवादी एजेण्डे के तहत वहाँ भेजे संघी प्रशासक प्रफुल्ल पटेल लोगों के पारम्परिक खान-पान में दखल देने से लेकर उनके घर-बार, रोज़गार, राजनीतिक और जनवादी अधिकार सबकुछ छीन लेने का मंसूबा पाले हुए हैं। तरह तरह के प्रस्ताव पेश किये जा रहे हैं, जिसमें विकास के नाम पर आम लोगों की ज़मीन हथियाने की योजना से लेकर स्थानीय चुनाव में उनकी भागीदारी सीमित करने तक शामिल हैं। एक प्रस्ताव के मुताबिक दो से अधिक बच्चों के माता-पिता स्थानीय निकाय चुनाव में हिस्सेदारी नहीं कर सकते। यही वजह है कि लक्षद्वीप के लोगों से लेकर देशभर के इंसाफ़पसन्द बुद्धिजीवी और नागरिक देश के सबसे शान्त इलाक़ों में से एक में मोदी सरकार के इस साम्प्रदायिक खेल का विरोध कर रहे हैं।

इससे पहले कि हम भाजपा सरकार के इन जनविरोधी क़दमों पर बात करें, आइए लक्षद्वीप की भौगोलिक, सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों के बारे में कुछ जान लें। लक्षद्वीप कई द्वीपों का समूह है, जो कि अरब सागर में स्थित है। यहाँ के द्वीप भारत के तटीय शहर कोच्चि से क़रीब 220-440 किमी की दूरी पर हैं। यह 36 अलग-अलग द्वीपों का समूह है जिनका कुल क्षेत्रफल मात्र 32.62 वर्ग किलोमीटर है। 2011 की जनगणना के मुताबिक यहाँ की कुल आबादी 64,473 है। केरल राज्य के निकट होने की वजह से यहाँ की अधिकतम आबादी मलयालम भाषा की ही एक बोली बोलती है। आबादी का बड़ा हिस्सा नारियल की खेती व मछलीपालन पर निर्भर है।

लक्षद्वीप में मुस्लिम आबादी की बहुतायत है। जनगणना 2011 के मुताबिक मुस्लिम आबादी कुल आबादी का 96.58% हिस्सा है। ऐसे में यह समझना मुश्किल नहीं कि भाजपा यहाँ के शान्तिपूर्ण माहौल को बिगाड़ने में क्यों लगी हुई है। दूसरा सबसे बड़ा कारण यह है कि लक्षद्वीप की प्राकृतिक सुन्दरता को देशी-विदेशी अमीर सैलानियों को बेचने के लिए यहाँ फ़ाइव स्टार होटल, रिज़ॉर्ट आदि बनवाने के ठेके अपने चहेते पूँजीपतियों को दिये जायें, जिनमें से ज़्यादातर गुजराती हैं। इसके लिए लक्षद्वीप के नाज़ुक पर्यावरण को नुक्सान से बचाने के लिए तमाम क़ानूनों को तोड़ने-मरोड़ने में भी भाजपा को गुरेज़ नहीं है।

लक्षद्वीप एक केन्द्र शासित प्रदेश है। भाजपा के पूर्व नेता तथा आरएसएस के क़रीबी प्रफुल्ल खोदा पटेल पिछले साल दिसम्बर में नये लक्षद्वीप प्रशासक बनाये गये थे। इसके बाद वे लगातार वहाँ पर आरएसएस के अल्पसंख्यक विरोधी एजेण्डे के तहत काम कर रहे हैं; आम जनता तथा स्थानीय निर्वाचित प्रतिनिधियों से मशविरा किये बिना विधान बदल रहे हैं, क़ानूनों को संशोधित कर रहे हैं। ये तमाम परिवर्तन तथा संशोधन जनविरोधी चरित्र के हैं। लक्षद्वीप को फ़ासीवाद की नयी प्रयोगशाला बनाया जा रहा है। गुजरात में नरेन्द्र मोदी के मुख्यमंत्रित्व काल में गृहमंत्री तथा दादरा और नगर हवेली तथा दमन और दीव के पूर्व प्रशासक रह चुके प्रफुल्ल खोदा पटेल के नेतृत्व में आरएसएस लक्षद्वीप की मुस्लिम बहुल आबादी को अलग-थलग करने का काम कर रहा है।

अमित शाह के जेल जाने के दौरान प्रफुल्ल ही मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी के सिपहसालार थे। ग़ौरतलब है कि प्रफुल्ल पटेल का विवादों के साथ चोली-दामन का साथ रहा है। फिलहाल उन पर महाराष्ट्र के स्वतंत्र सांसद मोहन डेलकर की आत्महत्या के सिलसिले में जाँच भी चल रही है।

लक्षद्वीप में कोरोना के फ़ैलने के ज़िम्मेदार भी यहाँ के प्रशासक प्रफुल्ल पटेल ही थे। देशभर में कोरोना के संक्रमण फ़ैलने के बावजूद लक्षद्वीप इससे बचा हुआ था, क्योंकि यहाँ आने वाले सभी यात्रियों की कोविड जाँच और एक हफ़्ते का क्वारण्टाइन अनिवार्य था। लेकिन प्रफुल्ल ने इस अनिवार्यता को ख़त्म कर यहाँ कोविड को खुला निमंत्रण दे दिया। यहाँ पहला मामला 18 जनवरी 2021 को सामने आया था; और आज कुल आबादी का दस फ़ीसदी हिस्सा इसकी चपेट में आ चुका है। यह संघी प्रशासक की लापरवाही का नतीजा है। लक्षद्वीप में मई 2021 में कोरोना जाँच में पॉज़िटिव आने की दर 68 प्रतिशत पहुँच गयी थी। जनविरोधी क़ानून सीएए-एनआरसी के विरोध के दौरान भी यहाँ प्रदर्शन कर रहे लोगों पर कार्रवाई की गयी थी।

लक्षद्वीप में आम लोग प्रफुल्ल पटेल के प्रशासन द्वारा लाये गये जनविरोधी प्रस्तावों, मसौदों का कड़ा विरोध कर रहे हैं। लोगों के विरोध के केन्द्र में "गुण्डा अधिनियम", "तटरक्षक अधिनियम", "पशु संरक्षण अधिनियम" तथा "मसौदा लक्षद्वीप विकास प्राधिकरण विनियमन, 2021 (एलडीएआर 2021)" है। आइए, हम एक-एक कर समझते हैं कि किस प्रकार भाजपा इन क़ानूनों के ज़रिए अपने फ़ासीवादी एजेण्डे को लागू करने का काम कर रही है।

प्रफुल्ल ने प्रशासक के तौर पर पदभार सँभालते ही सबसे पहले गुण्डा अधिनियम को लागू करने का काम किया। इस क़ानून के तहत प्रशासक किसी को भी शक की बिना पर पुलिस से पकड़वाकर रख सकता है और उस व्यक्ति को किसी भी तरह की क़ानूनी मदद से वंचित रखा जायेगा। इस नज़रबन्दी की अवधि 12 महीने या उससे अधिक भी हो सकती है। ग़ौरतलब है कि पूरे भारत में लक्षद्वीप सबसे कम आपराधिक मामले वाले प्रदेशों में आता है। 31 दिसम्बर 2019 की आधिकारिक जानकारी के मुताबिक लक्षद्वीप की जेलों में केवल 4 लोग ही क़ैद हैं। आम लोगों का कहना है कि ऐसे प्रदेश में यह क़ानून गैर-जनवादी है, जहाँ अपराध नहीं के बराबर होते हैं और कारागार आम तौर पर ख़ाली रहते हैं। इस क़ानून का प्रयोग लोगों के जनवादी दायरे को सीमित करने के लिए किया जायेगा। इसका असल मकसद प्रशासन के ख़िलाफ़ उठने वाली आवाज़ों को दबाना है।

जिस तरीक़े से पूरे देशभर में सीएए-एनआरसी और मोदी सरकार की तमाम जनविरोधी नीतियों के विरोध में प्रदर्शन हुए, ऐसे में यह सरकार अलग-अलग हथकण्डों से जनता के प्रतिरोध की आवाज़ को दबाने की कोशिश कर रही है। यूएपीए से लेकर रासुका तक, ये सभी क़ानून जनता के जनवादी अधिकारों की हनन के लिए लाये गये हैं। इसी कड़ी में सरकार लक्षद्वीप में गुण्डा अधिनियम लाकर वहाँ अपने ख़िलाफ़ उठने वाले आवाज़ों को दबाने की तैयारी कर रही है।

मसौदा लक्षद्वीप विकास प्राधिकरण विनियमन, 2021(एलडीएआर 2021) के प्रस्तावित कार्यान्वयन के ख़िलाफ़ भी आन्दोलन जारी है। लोग इस मसौदे के जनवाद विरोधी चरित्र की आलोचना कर रहे हैं और उसके ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं। एलडीएआर 2021 के प्रावधानों के तहत सरकार, योजना और विकास प्राधिकरण या उसके किसी अधिकारी या उसके द्वारा नियुक्त या अधिकृत व्यक्तियों के ख़िलाफ़ कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं की जा सकती है। इसके मुताबिक प्रशासन कभी भी किसी भी घर की तलाशी बिना वारण्ट के ले सकता है। इसमें कड़े प्रावधान हैं जो प्रशासक को किसी भी ज़मीन को विकास गतिविधियों के नाम पर चिह्नित करने का अधिकार देता है। एक बार विकास के लिए चिह्नित हो जाने के बाद उस ज़मीन का विकास और उपयोग पूरी तरह से सरकार की इच्छा और महत्वाकांक्षा के हिसाब से किया जायेगा।

एलडीएआर 2021 की धारा 92 और धारा 93 में द्वीपवासियों से क्षेत्र परिवर्तन तथा विकास के लिए शुल्क लगाने का प्रावधान है। यानी द्वीपवासियों को विकास योजना के अनुसार क्षेत्र परिवर्तन के लिए अनुमति प्राप्त करने के लिए भुगतान करना होगा साथ ही उन्हें अपनी ज़मीन विकसित करने की अनुमति के लिए भी भुगतान करना होगा। इस मसौदे के तहत सरकार "विकास" के नाम पर हाइवे, म्यूज़ियम, पार्क इत्यादि बनाने की बात कर रही है। यह हास्यास्पद इसलिए है क्योंकि लक्षद्वीप के सबसे बड़े द्वीप का क्षेत्रफल सिर्फ़ 4.9 वर्ग किमी है, जिस पर जनसंख्या घनत्व 2312 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। ऐसे में व्यावहारिक तौर पर यह कितना सम्भव है, इसका फ़ैसला हम पाठकों पर छोड़ते हैं।

प्रशासक महोदय आम लोगों के खानपान में दखल देने का भी काम कर रहे हैं। इसकी शुरुआत लक्षद्वीप में, जहाँ लोग आम तौर पर समुद्री भोजन पर निर्भर करते हैं, स्कूल में परोसे जाने वाले भोजन से मांसाहारी खाद्य पदार्थों को हटाकर की गयी। लक्षद्वीप में परम्परागत तरीक़े से बीफ़ का उपभोग किया जाता है। यही नहीं, केरल, गोवा, उत्तरपूर्व के राज्यों समेत कई जगहों में ऐसा किया जाता है, और भाजपा इस मसले पर मौक़े मुताबिक़ अपनी राजनीति करती रही है। लेकिन अब "पशु संरक्षण अधिनियम" लाकर द्वीपों पर गोमांस के लिए वध तथा प्रसंस्करण को रोकने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। दूसरी तरफ़, सैलानियों को लुभाने के लिए यहाँ शराब से प्रतिबन्ध हटा दिया गया है, जो मुस्लिम बहुल द्वीपवासियों की सांस्कृतिक और धार्मिक भावनाओं के ख़िलाफ़ जाता है।

"तटरक्षक अधिनियम" के उल्लंघन का हवाला देते हुए प्रशासन ने आम मछुआरों के जाल और अन्य उपकरण रखने के शेड को ध्वस्त कर दिया है। आजीविका के लिए मुख्य रूप से मछली पकड़ने का व्यवसाय करने वाली अधिकांश द्वीपवासी आबादी के लिए यह अधिनियम किसी पीड़ा से कम नहीं है। सरकार के निशाने पर पूरा मछली व्यवसाय है। महामारी के कारण लोगों के रोज़गार की स्थिति ख़ासा ख़राब हो चुकी है। पर्यटन और कृषि जैसे सरकारी कार्यालयों में काम करने वाली आबादी का रोज़गार छिन गया है, 38 आँगनवाड़ी केन्द्रों को बन्द कर दिया गया है। प्रशासन लोगों की ख़राब होती दशा की तरफ़ आँख मूँद कर बैठा है।

इन सारे प्रस्तावों को आरएसएस का खुला समर्थन प्राप्त है। आरएसएस ने अपने अंग्रेज़ी मुख्यपत्र 'ऑर्गनाइज़र' में दावा किया है कि 96 फ़ीसदी मुस्लिम आबादी वाले इस छोटे से द्वीप में इस्लामिक कट्टरपन्थी लोगों को प्रशासन के ख़िलाफ़ भड़का रहे हैं। विरोधियों को इस्लामिक कट्टरपन्थी बताते हुए प्रफुल्ल पटेल के समर्थन में कसीदे पढ़े गये हैं। आज आरएसएस एक फ़ासीवादी संगठन के रूप में अपना काम कर रहा है। इसका काम सिर्फ़ ज़हर बोना और नफ़रत की खेती करना है जिसकी फ़सल काटकर भाजपा सत्ता में बनी रहे और अपने पूँजीपति आक़ाओं की सेवा करती रहे। देशभर में प्रगतिशील ताक़तों को फ़ासीवादी एजेण्डे के ख़िलाफ़ संघर्षरत जनता के समर्थन में खड़े होना होगा, और इनके मंसूबों को हर हाल में नाकाम करना होगा।

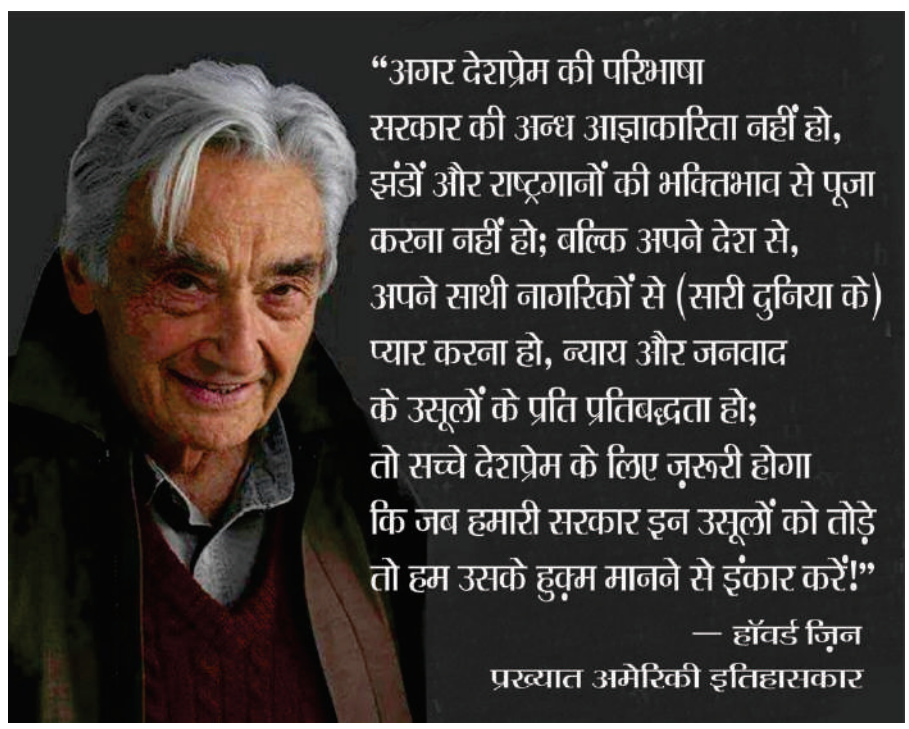

आगामी पंजाब विधानसभा चुनाव में अकाली दल और बसपा का अवसरवादी गठबन्धन - एक संक्षिप्त टिप्पणी!

पंजाब में आगामी विधानसभा चुनाव के मद्देनजर तमाम चुनावबाज़ पार्टियाँ अपने चुनावी जोड़-तोड़ में लग गयी हैं। हाल ही में शिरोमणि अकाली दल तथा मायावती के नेतृत्व वाली बहुजन समाज पार्टी का 25 वर्षों बाद दोबारा मिलन हुआ है। ग़ौरतलब है कि खेती क़ानूनों के चलते शिरोमणि अकाली दल ने भाजपा के साथ अपना ढाई दशक पुराना गठबन्धन पिछले वर्ष सितम्बर में तोड़ा था। धार्मिक कट्टरपन्थी राजनीति करने वाली अकाली दल मुख्य तौर पर पंजाब के धनी किसानों, कुलकों का प्रतिनिधित्व करती है। यह वही तबक़ा है जो जनविरोधी लाभकारी मूल्य को बचाने की लड़ाई लड़ रहा है और ठीक इसी वजह से कृषि कानूनों का विरोध कर रहा है।

अब नयी राह के राही के तौर पर शिरोमणि अकाली दल का साथ निभाने के लिए बसपा रंगमंच पर उभर कर सामने आयी है। बसपा दलित अस्मितावाद की राजनीति करती रही है। पंजाब के कुल 117 विधानसभा सीटों पर 1997 से शिरोमणि 93 तथा भाजपा 24 सीटों के समीकरण पर उम्मीदवारी पेश करती आई थी। बसपा आगामी चुनाव में नये गठबन्धन के तहत 20 सीटों से अपनी दावेदारी पेश करेगी।

पंजाब में दलित आबादी कुल आबादी का 31.94% है; देश के किसी भी राज्य के मुकाबले यह सबसे अधिक है। राज्य की आबादी में क़रीब एक तिहाई हिस्सा होने के बावजूद इनके पास पंजाब की कुल कृषि योग्य भूमि के मात्र 2.3% का मालिकाना है। यह आबादी ज़्यादातर धनी किसानों कुलकों के खेतों-खलिहानों तथा अन्य आर्थिक इकाइयों में अपना उजरती श्रम बेचकर जीवन गुज़र-बसर करती है। पंजाब की कुल आबादी का तक़रीबन 25% हिस्सा जट्ट सिक्खों का है। लेकिन पंजाब के क़रीब 80% ज़मीन का मालिकाना इनके पास है। हालांकि यह सच है कि जट्ट सिखों की एक विचारणीय आबादी छोटे और सीमांत किसान के रूप में भी विद्यमान हैं, लेकिन मध्यम और बड़े किसान लगभग विशेष रूप से जट्ट सिख ही हैं। ज़ाहिरा तौर पर इनके बीच भी वर्ग अन्तरविरोध व्याप्त हैं और आबादी का एक हिस्सा उजरती श्रम करने को भी मजबूर है।

राज्य की कुल 11 लाख जोतों में से केवल 63,480 (6.02%) दलितों के पास हैं। पंजाब की कुल श्रमिक आबादी का 35.88 प्रतिशत हिस्सा अनुसूचित जाति से है। पंजाब में ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले 523,000 परिवारों में से 321,000 या 61.4% दलित हैं। वहाँ कृषि और ग़ैर-कृषि क्षेत्र में ग़रीबी दर 17.9 प्रतिशत से 21.7 प्रतिशत होने के साथ ही दलित मज़दूर आबादी सबसे ग़रीब व अरक्षित आबादी है।

पूरे पंजाब में दलित उत्पीड़न का एक बर्बर इतिहास रहा है। अधिकांश गाँवों में दलितों के लिए अलग पूजा स्थल और श्मशान घाट हैं। वे प्रार्थना करने के लिए गुरुद्वारों में प्रवेश कर सकते हैं, लेकिन लंगर के कामों में शामिल नहीं हो सकते। दलितों को गुरुद्वारों में धार्मिक समारोहों के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले बर्तनों को छूने की अनुमति नहीं है। यहाँ तक कि शादी-विवाह में घोड़ी चढ़ने की वजह से दलितों को स्थानीय सम्पत्तिशाली तबकों के कोप का शिकार होना पड़ता है। पंजाब में आम तौर पर दलित आबादी का आर्थिक शोषण तथा अर्थिकेतर उत्पीड़न करने का काम कुलक और धनी किसान आबादी करती है, जिसका राजनीतिक प्रतिनिधित्व शिरोमणि अकाली दल करती है।

यह गठबन्धन दलित अस्मितवादी राजनीति करने वाली बसपा की अवसरवादी राजनीति की एक और नुमाइश है। बसपा फासीवादी और सवर्णवादी भाजपा की गोद में बैठकर सत्ता सुख भी भोग चुकी है। और यही बात अकाली दल पर भी लागू होती है। ज़ाहिरा तौर पर धार्मिक कट्टरपन्थी तथा अस्मितावादी राजनीति के ये दोनों नुमाइन्दे अपने-अपने तरीक़ों से अवसरवादी राजनीति करते रहे हैं, ऐसे में इनका यह हालिया मेल इनकी राजनीति की तार्किक परिणति है। ये दोनों ही धाराएँ आम मेहनतकश आबादी को वर्ग आधार पर संगठित होने से रोकती हैं, और शोषकों-उत्पीड़कों के हितों का ख़्याल रखती हैं।

– 'मुक्तिकामी छात्रों युवाओं का आह्वान' से साभार

जनता के विरोध और आन्दोलनों को कुचलने के लिए हरियाणा सरकार का नया काला क़ानून "सम्पत्ति क्षति वसूली क़ानून – 2021"

इस क़ानून का असली मकसद सामाजिक कार्यकर्ताओं और जनान्दोलनों को निशाना बनाना है!

हरियाणा भाजपा-जजपा की ठगबन्धन सरकार ने 18 मार्च को विधानसभा में 'सम्पत्ति क्षति वसूली विधेयक – 2021' नामक विधेयक पेश किया था। विधानसभा में भाजपा-जजपा का बहुमत होने के कारण विधेयक बिना किसी व्यवधान के पारित भी हो गया था। उसके बाद इसे राज्यपाल सत्यदेव नारायण आर्य की मुहर लगवाने के लिए उनके पास भेजा गया। राज्यपाल ने विधेयक को अप्रैल में ही मंज़ूरी दे दी थी। इसके बाद 26 मई को हरियाणा प्रदेश में इस विधेयक को क़ानून के तौर पर लागू कर दिया गया।

सरकार के अनुसार इस क़ानून का मकसद सार्वजनिक और निजी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने वाले लोगों पर कार्रवाई करना और उनसे हर्जाना वसूल करना है लेकिन कौन नहीं जानता है कि ऐसे क़ानूनों का निशाना सत्ता के ख़िलाफ़ उठने वाले आन्दोलनों-आन्दोलनकारियों को बनाया जाता है। क़ानून की धारा 14 के अनुसार सम्पत्ति क्षति की वसूली सिर्फ़ हिंसा और तोड़फोड़ करने वालों से ही नहीं की जायेगी बल्कि प्रदर्शन के नेतृत्वकारियों, आयोजकों, योजनाकर्ताओं, प्रोत्साहित करने वालों और भागीदारों से भी की जायेगी। यह धारा साफ़ तौर पर जनता के जनवादी हक़ों पर ख़तरनाक क़िस्म का हमला करती है। यदि किसी शान्तिपूर्ण आन्दोलन में सरकार द्वारा भेजे गये उपद्रवी ही तोड़-फोड़ मचा गये तो उसका ज़िम्मेदार कौन होगा? बहुत बार आन्दोलनों को कुचलते हुए ख़ुद पुलिस के लोग भी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने जैसी गतिविधियों को अंजाम देते हुए देखे गये हैं। दिल्ली में पिछले साल हुए दंगों के दौरान तो दिल्ली पुलिस ही कैमरे तोड़ते हुए पायी गयी थी। क्या इनपर भी यह क़ानून लागू होगा?

यदि किसी आन्दोलन में चन्द अराजक तत्त्वों ने कुछ तोड़-फोड़ कर दी तो उनपर कार्रवाई करने के बजाय शान्तिपूर्ण ढंग से हिस्सेदारी कर रहे लोगों और आयोजकों को लपेटना सरकारी तानाशाही के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। क़ानून के अनुसार सम्पत्ति क्षति हर्जाना नहीं चुकाने पर आरोपी की सम्पत्ति को भी कुर्क किया जा सकेगा। यह क़ानून जिस ख़ास समय में आया है उससे साफ़ है कि क़ानून का मकसद लोगों के जनवादी हक़ों पर हमला बोलना है। इससे पहले इसी तरह सम्पत्ति क्षति वसूली के आदेश उत्तर प्रदेश सरकार भी दे चुकी है। इन आदेशों का इस्तेमाल सीएए-एनआरसी-एनपीआर के साम्प्रदायिक, असंवैधानिक और गैर-जनवादी क़ानूनों के ख़िलाफ़ खड़े हुए शान्तिपूर्ण आन्दोलन को कुचलने के लिए ही किया गया था। चन्द अराजक तत्त्वों (और किसको पता है कि वे किसके आदमी थे) को सजा देने की बजाय सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओं को निशाना बनाते हुए उन्हें जेलों में डाल दिया गया था और चौक-चौराहों पर उनके फ़ोटो लगा दिये गये थे।

कमाल की बात तो यह है कि सम्पत्ति की रक्षा के क़ानून उन पार्टियों की सरकारें पारित कर रही हैं जिनका दंगों की आग भड़काने और सरकारी-गैर सरकारी सम्पत्तियों को फूँकने का लम्बा इतिहास रहा है। राम जन्मभूमि के तथाकथित आन्दोलन के इतिहास को हम भूले नहीं होंगे जिस दौरान हुए दंगों के बाद हज़ारों लोगों की जान गयी थी और अरबों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ था। उत्तर प्रदेश-हरियाणा सहित पूरा उत्तर भारत इस विनाशलीला का साक्षी बना था। साल 2013 में मुज़फ़्फ़रनगर, उत्तर प्रदेश में दंगों की राजनीति करके जान-माल का नुकसान करने वाले कौन लोग थे और क्या उनपर कोई कार्रवाई हुई थी? जवाब है नहीं। ख़ुद योगी आदित्यनाथ के ही ख़िलाफ़ दंगे भड़काने और सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने के दर्जनों मामले थे जिन्हें उन्होंने मुख्यमंत्री बनने के बाद ख़ुद ही रद्द करवा दिया। क्या 2016 में जातिवाद की आग भड़काकर हरियाणा को जलवाने वाले राजकुमार सैनी और यशपाल मालिक जैसे भाजपा के प्यादों के ऊपर कोई कार्रवाई हुई थी? जवाब है नहीं। मेवात में साम्प्रदायिकता की आग भड़काने की तैयारी करने वालों पर कोई कार्रवाई हो रही है? इसका भी जवाब है नहीं। और आगे भी इसकी कोई उम्मीद नहीं की जा सकती है कि साम्प्रदायिक दंगों को भड़काकर वोट की गोट लाल करने वालों पर कोई कार्रवाई होगी। कहा जाता है, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति और इसी की तर्ज़ पर भाजपा कहती है संघी हिंसा हिंसा न भवति। हरियाणा का मौजूदा "सम्पत्ति क्षति वसूली क़ानून – 2021" भी इसी का दूसरा नाम है।

फ़िलिस्तीनी जनता का बहादुराना संघर्ष...

(पेज 12 से आगे)

रहा है। उपनिवेशों की स्वतंत्रता के बाद विश्व का यह क्षेत्र आधुनिक साम्राज्यवाद की मार लगातार झेल रहा है। मध्यपूर्व एक खुला युद्ध क्षेत्र बना हआ है जहाँ शहरों, गाँवो और बस्तियों पर बेरहमी से बमबारी की जाती है; छोटे बच्चे जहाँ रातों को भय से सो नहीं पाते, माँएँ हर रात दुआ कर सोती हैं कि सुबह अपने बच्चों का मुँह देख पायें; पिता असहाय-लाचार सा अपने जले खेतों-खलिहानों को देखकर डरता है कि आने वाले दिन वह अपने भूखे बच्चों का मुँह कैसे देखेगा। यह सतत् त्रासदी से गुज़रता क्षेत्र है जिसकी तुलना कहीं से नहीं की जा सकती। वजह हम पहले ही बता चुके हैं – इस क्षेत्र का रणनीतिक महत्व। स्पष्ट है कि जनता इस क़दर भयभीत, लाचार और मुफ़लिसी का जीवन लगातार जीती नहीं चली जाएगी। वह लगातार लड़ तो रही है लेकिन एक सही मुकम्मल मंज़िल तक पहुँचने के लिए सही राजनीतिक दिशा और समझदारी की आवश्यकता है।

फिलिस्तीन एक राष्ट्र के तौर पर अपने दमन और उत्पीड़न के ख़िलाफ़ संघर्ष कर रहा है और यह संघर्ष इतिहास में कई दौरों से गुज़र चुका है जिसमें प्रतिरोध का सबसे सशक्त दौर अखिल अरब राष्ट्रवाद का दौर रहा था। फ़िलिस्तीन की आज़ादी के साथ दो पहलू जुड़े हुए हैं एक फिलिस्तीन की राष्ट्र के तौर पर स्वतंत्रता; दूसरा ज़ायनवादी इज़रायल का साम्राज्यवादी निर्मिति होने की वजह फ़िलिस्तीन से पूरे अरब विश्व का जुड़ा होना। पश्चिमी साम्राज्यवाद के निहित स्वार्थों की वजह से यह पूरा क्षेत्र साम्राज्यवाद की एकल गाँठ बना हुआ है। आने वाले वर्षों में अगर जनक्रान्ति की शुरुआत कहीं से हुई, तो यह पूरे क्षेत्र में जंगल की आग की तरह फैल जायेगी। तब एक उन्नत स्तर की अखिल अरब एकजुटता सामने आयेगी। 1960 के दशक के बाद इतिहास में अखिल अरब राष्ट्रीयता को नेतृत्व देने वाली बुर्जुआज़ी अपनी प्रगतिशील सम्भावनाओं से रिक्त हो चुकी है, इसलिए नयी अखिल अरब राष्ट्रीयता का चरित्र सर्वहारा होगा। यदि इस क्रान्ति को फ़िलिस्तीन से शुरू होना है तो यह बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति होगी और फ़िलिस्तीनी बुर्जुआज़ी के बड़े हिस्से के ढुलमुल और समझौतापरस्त रवैये को देखते हुए ज़्यादा सम्भावना सर्वहारा पार्टी के नेतृत्व में इस क्रान्ति के पूरा होने की है। ऐसा कब होगा, यह अभी भविष्य के गर्भ में है, लेकिन विज्ञान अपना रास्ता बना लेता है और हमें पूरा विश्वास है कि फ़िलिस्तीन और अरब विश्व का संजीदा पढ़ा-लिखा तबका और नौजवान गम्भीरता से इस प्रयास में लगा होगा।

मुनाफ़ाख़ोरी के गर्भ से पैदा हुआ वैक्सीन संकट

हमारे देश और दुनिया में पैदा हुई वैक्सीन की किल्लत का ज़िम्मेदार कौन?

(पेज 1 से आगे)

तरह से अयोग्य साबित हो चुका अनियंत्रित अराजक "मुक्त" बाज़ार।

वैसे तो पूँजीवादी अर्थशास्त्र के पैरोकार न जाने कब से यह डींग हाँकते रहे हैं कि निजी उद्यमिता ही नवोन्मेष का इकलौता स्रोत है। पर उनकी इस डींग को बड़ी फ़ार्मा कम्पनियों ने ही इस महामारी में बिल्कुल झूठा साबित कर दिया। दशकों से फ़ार्मा उद्योग द्वारा वैक्सीनों पर होने वाले अनुसन्धान को वरीयता में नीचे धकेल दिये जाने का काम जारी था, क्योंकि वैक्सीन यानी बीमारी की रोकथाम सम्बन्धी शोध में निवेश बड़ी फ़ार्मा कम्पनियों के लिए कम फ़ायदे का सौदा था। 21वीं सदी की शुरुआत से ही सार्स, मर्स, इबोला, नीपाह जैसी एक के बाद एक पैदा हो रही महामारियों के बीच वैक्सीन रिसर्च पर होने वाले निवेश की माँग को बड़ी फ़ार्मा कम्पनियाँ और पूँजीवादी सरकारें अनदेखा करती रहीं। अमेरिका की 18 सबसे बड़ी फ़ार्मा कम्पनियों में से 15 ने तो इस दिशा में शोध को पूरी तरह छोड़ रखा था। हृदयरोग की दवाएँ, मनोचिकित्सा में इस्तेमाल होने वाली ट्रैंक्विलाइज़र (प्रशांतक दवाएँ) के नये नये प्रकार, कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रण में लाने वाले क़िस्म-क़िस्म की नयी स्टेटिन दवाएँ मुनाफ़े के मामले में कम्पनियों के लिए सोने का अण्डा देने वाली मुर्ग़ी बनी रहीं, पर अस्पताल जनित संक्रमण, नये संक्रामक रोग व तीसरी दुनिया के पारम्परिक रोगों से होने वाली बीमारियों पर रिसर्च निवेश के लिए तरसते रहे क्योंकि वहाँ निवेश मुनाफ़े का सौदा नहीं रहा।

यहाँ तक कि बायोएनटेक-फाईज़र, एस्ट्रा ज़ेनेका जैसी बड़ी कम्पनियों ने भी कोविड वैक्सीन बनाने की पहलक़दमी तब शुरू की जब इन्हें इनके देशों की सरकार से शोध के लिए करदाताओं की जेब से वसूली हुई मोटी रकम के पैकेज मिले। उदाहरणस्वरूप सिर्फ़ मॉडर्ना वैक्सीन के निर्माण हेतु रिसर्च की शुरुआत करने से लेकर उसे ख़रीदने तक, अमेरिकी सरकारी एजेन्सियों ने कम्पनी को ढाई अरब डॉलर का भुगतान किया। **अब जब मुनाफ़ा हो रहा है तो फ़ायदा कम्पनी का, और जब जोखिम लेने की बात आये, तो उसके लिए जनता के टैक्स का पैसा।**

इसके अलावा वैक्सीन निर्माण और रिसर्च निजी हाथों में होने के कारण दुनिया के विभिन्न कोने में हो रहे शोधकार्य एक दूसरे के पूरक न होकर प्रतिस्पर्धी हो गये। रिसर्च में ऐसी गलाकाटू प्रतिस्पर्धा न सिर्फ़ लागत और संसाधनों के मामले में महँगी पड़ती है, बल्कि वह उत्पाद की प्रभाविता पर भी प्रतिकूल असर डालती है क्योंकि यह दुनिया के कोने कोने में एक ही दिशा में कार्यरत वैज्ञानिकों को आपसी सहयोग करने और एक दूसरे के रिसर्च का डेटा साझा करते हुए सर्वोत्तम उत्पाद का निर्माण करने से रोकती है। उदाहरण स्वरूप, एस्ट्राज़ेनेका-ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी द्वारा निर्मित वैक्सीन जो कोविशील्ड नाम से उपलब्ध है, और रूस की स्पुतनिक-वी काफ़ी हद तक एक ही (वायरल वेक्टर) प्रकार की वैक्सीन हैं। इसी तरह मॉडर्ना और फाइज़र, दोनों आर.एन.ए. तकनीक से बनी काफ़ी मिलती जुलती वैक्सीन हैं। **यदि इनकी निर्माता कम्पनियों में मुनाफ़े के लिए गलाकाटू प्रतिस्पर्धा नहीं होती, इनके निर्माण के दौरान एक दूसरे के साथ रिसर्च डेटा साझा किया गया होता और आपसी सहयोग से वैक्सीन का निर्माण किया गया होता तो न सिर्फ़ काफ़ी समय व संसाधनों की बचत होती, साथ ही ये अपने सर्वोत्तम स्वरूप में विकसित होकर जनता तक पहुँचते।**

अब आते हैं इन नयी वैक्सीनों की जनता तक पहुँच सुनिश्चित करने के लक्ष्य पर। यहाँ नवउदारवादी प्रचार तंत्र के एक और असंख्य दफा दोहराये गये झूठ का पर्दाफ़ाश होता है कि मुक्त बाज़ार की प्रतिस्पर्धा माँग व आपूर्ति में सन्तुलन बनाये रखने और प्रभावी ढंग से वितरण को अंजाम देने में सक्षम है। वैसे तो इस दावे की धज्जियाँ साल 2020 की शुरुआत में ही उड़ गयीं जब हमने अमीर साम्राज्यवादी देशों को ज़रूरी मेडिकल उपकरणों, पीपीई किट, वेंटीलेटर आदि की हड़प करते और ग़रीब देशों पर इनकी भीषण कमी का संकट थोपते हुए देखा। मौजूदा वैक्सीन संकट भी उसी कहानी को दोहरा रहा है। इज़राइल में बेहतरीन टीकाकरण दर के पीछे यही समीकरण काम कर रहा है, जिसने फाईज़र-बायोएनटेक की वैक्सीन के लिए दुनिया में सबसे ज़्यादा बोली लगायी, मगर फ़िलिस्तीन और यमन जैसे ग़रीब मुल्क टीकाकरण दर की इस होड़ में बहुत पीछे धकेल दिये गये। अमेरिका भी फ़िलहाल इसी नीति पर चल रहा है। यहाँ तक कि यूरोपियन यूनियन के भीतर भी, जहाँ सदस्य देशों के बीच समन्वय के आधार पर आबादी के अनुपात में वैक्सीन के उचित वितरण के लिए समझौता हुआ था, वहाँ भी जर्मनी जैसे धनी मुल्क अपने लिए तय कोटे से कहीं अधिक वैक्सीन डोज़ प्राप्त करने में सफल रहे। यदि यही परिस्थिति आगे भी बरकरार रहती है जिसमें अधिक बोली लगाने वाले राष्ट्र अपनी ज़रूरत से अधिक वैक्सीन ख़रीदना जारी रखते हैं तो वैक्सीन की आपूर्ति निरन्तर वैश्विक माँग से कम ही रहेगी। तमाम राष्ट्र वैक्सीन के लिए बोली लगाने और एक दूसरे को पछाड़ने की ऐसी गलाकाटू होड़ में लग गये क्योंकि आपूर्ति की कमी है, और यह कमी इसलिए है क्योंकि फ़ार्मा कम्पनियों को अपने आविष्कार दुनिया के साथ साझा न करने का अधिकार प्राप्त है। इस घोर अनियमितता के पीछे ज़िम्मेदार हैं फ़ार्मा कम्पनियों के पेटेण्ट जो वैक्सीन आपूर्तिकर्ता को विज्ञान के इस आविष्कार पर एकाधिकार थोपने का अधिकार दे देते हैं। वैक्सीनों को इन कम्पनियों की अनन्य बौद्धिक सम्पदा बनाये रखना इनकी क़ीमत को भी कई गुणा तक बढ़ा देता है, साथ ही इनके वैश्विक स्तर पर उत्पादन और वितरण की प्रभाविता को भी क्षीण करता है।

अब बात करते हैं भारत की, क्योंकि यहाँ वैक्सीन संकट और कुप्रबन्धन अलग ही 'कीर्तिमान' स्थापित कर रहा है। **मोदी सरकार की लचर और घटिया टीकाकरण योजना ने यह सुनिश्चित किया है कि भारत न सिर्फ़ वर्तमान में वैक्सीन की भयंकर किल्लत से जूझ रहा है बल्कि आने वाले लम्बे समय तक यह किल्लत बरकरार रहेगी।** प्रधानमंत्री द्वारा 7 जून, 2021 को दिये गये भाषण में अपने 19 अप्रैल, 2021 की तुगलकी वैक्सीन नीति के कारण पैदा हुए भयंकर वैक्सीन संकट और कुप्रबन्धन को सही करने का आंशिक प्रयास हुआ। सरकार कह रही है कि अब वह कोविड वैक्सीन के सिर्फ़ 50% डोज़ ख़रीदने के बजाय सीधे 75% डोज़ खरीदेगी और 18 वर्ष से ऊपर के हर नागरिक का मुफ़्त टीकाकरण करेगी। इस तरह 19 अप्रैल की नीति के वजह से राज्यों पर पड़ने वाले "अतिरिक्त भार" से उन्हें मुक्त करने का कथित प्रयास किया जा रहा है। हालाँकि कुल वैक्सीन का 25% हिस्सा अब भी निजी अस्पतालों के लिए रिज़र्व कर दिया गया है जिन तक सिर्फ़ पैसे वालों की पहुँच होगी। जो वैक्सीन अभी निजी अस्पतालों में उपलब्ध हैं वे वैक्सीन का दाम, अस्पताल का शुल्क और जीएसटी लगाकर 1100 से 1500 रुपये में मिल रही है। जहाँ **दुनिया के लगभग सभी देशों में वैक्सीन नि:शुल्क उपलब्ध है, भारत उन गिने-चुने देशों में से है जो वैक्सीन के पैसे वसूल रहा है।**

मोदी सरकार की 19 अप्रैल की "उदारीकृत टीकाकरण नीति" ने वैक्सीन कम्पनियों के सुपर मुनाफ़े के दरवाज़े पूरी तरह खोल दिये। इससे पहले की नीति वैक्सीनों की क़ीमत पर एक हद तक लगाम लगाती थी जिसमें वैक्सीन कम्पनियों को सामान्य मुनाफ़ा ही मिलता था। 19 अप्रैल की नयी टीकाकरण नीति वैक्सीन कम्पनियों के दबाव में लिया गया फ़ैसला था जिसने निजी वैक्सीन निर्माताओं को क़ीमत ख़ुद तय करने की छूट दे दी। इस नीति ने वैक्सीन के बाज़ार को ही पहले से अधिक अराजक, अनियंत्रित और विकृत करने का काम किया, केन्द्र, राज्य और निजी अस्पतालों को एक दूसरे के साथ ग़ैर ज़रूरी आपसी होड़ की स्थिति में ला खड़ा किया जिसकी वजह से वैक्सीन की बर्बादी भी बेतहाशा हुई। कुछ दिनों पहले हरियाणा के मुख्यमंत्री खट्टर द्वारा दिया गया यह मूर्खतापूर्ण वक्तव्य इसकी गवाही देता है – "हम भी दो लाख टीके एक दिन में लगाकर ख़त्म कर सकते हैं, लेकिन हम 50-60 हज़ार रोज़ टीके लगा रहे हैं, ताकि काम चलता रहे"।

नयी टीकाकरण नीति को लागू करते हुए केन्द्र सरकार ने राजनीतिक हित साधने के अपने "आपदा में अवसर" सिद्धान्त से ज़रा भी भटकाव नहीं किया। 19 अप्रैल की नयी वैक्सीन नीति लाते हुए यह तर्क पेश किया गया कि यह नीति राज्य सरकारों के दबाव में ही लायी गयी है क्योंकि वे टीकाकरण में "स्वायत्तता" की माँग कर रहे हैं, लेकिन सच्चाई यह थी कि राज्य वैक्सीन के वितरण में स्वायत्तता की माँग करते आये हैं न कि ख़रीदारी में। केन्द्र की इसी नीति के कारण झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ जैसे राज्य लम्बे समय तक पर्याप्त वैक्सीन ख़रीदने में नाकाम रहे क्योंकि वैक्सीन निर्माता कम्पनियाँ सिर्फ़ केन्द्र के साथ सौदा करने के इच्छुक थीं। नयी टीकाकरण नीति के कारण वैक्सीन अनुपलब्धता का संकट इतना गहरा हो गया कि अब तक मौन व्रत धारण किये बैठे सुप्रीम कोर्ट को भी चुप्पी तोड़नी पड़ी और इस नीति को "मनमाना और तर्कहीन" घोषित करना पड़ा। जब यह नीति सरकार के लिए सरदर्द बन गयी तो 7 जून को प्रधानमंत्री ने अपनी इस तुगलकी नीति में कुछ सुधार करने की कोशिश ज़रूर की लेकिन अपनी इस "उदारीकृत टीकाकरण नीति" की औंधे मुँह असफलता को स्वीकार करना तो दूर, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बने रहे।

हालाँकि **7 जून के भाषण के बावजूद 19 अप्रैल की तुगलकी टीकाकरण नीति की कई बुनियादी समस्याएँ जस की तस बनी हुई हैं।** पहली तो यह कि जो 25% वैक्सीन निजी अस्पतालों के लिए छोड़ी गयी, वह और कुछ नहीं, मुट्ठीभर अमीर व उच्च मध्यवर्ग के हिस्से आने वाला 'वैक्सीन आरक्षण' है, जो फ़ासिस्ट पूँजीवादी राज्यसत्ता की वर्ग पक्षधरता का अश्लील प्रदर्शन है। इण्डियन एक्सप्रेस की एक रिपोर्ट के अनुसार 19 अप्रैल की टीकाकरण नीति के दौरान ही मई महीने के दौरान हुई निजी अस्पतालों में वैक्सीन की बिक्री (1.2 करोड़ वैक्सीन डोज़) का 50% हिस्सा (60.57 लाख डोज़) महज़ 9 कॉर्पोरेट अस्पतालों ने ख़रीदा और बाकी के बचे 50% में से अन्य 300 निजी अस्पतालों ने वैक्सीन की ख़रीदारी की, उनमें भी अधिकतर बड़े शहरों के अस्पतालों ने। निजी अस्पतालों द्वारा ख़रीदे गये इन 1.2 करोड़ वैक्सीन डोज़ का मात्र 18% यानी 22 लाख़ डोज़ ही लगायी गयी। ये है 'मुक्त' बाज़ार में वितरण की "प्रभाविता" के उस मिथक का असली चेहरा जिसे नवउदारवादी नीतियों के पैरोकार पिछली आधी सदी से प्रचारित करते आये हैं। लाज़िमी है, सरकार के मुनाफ़ाख़ोर फ़ार्मा कम्पनियों के प्रति प्रेम-भाव में छोड़े गये अमीरों के 25% 'वैक्सीन आरक्षण' की भी यही गत होने वाली है। लाज़िमी है कि वैक्सीन निर्माता अपने स्टॉक को उन्हीं निजी खिलाड़ियों और अस्पतालों को बेचने के लिए वरीयता देंगे जो उनसे बेहतर मोलभाव की स्थिति में होंगे। वहीं सरकार को मिलने वाले कोटे की वैक्सीन की भारी किल्लत जारी रहेगी। सारांश यही कि 19 अप्रैल की अपनी तुगलकी टीकाकरण नीति को "सुधारने" के लिए दिये गये 7 जून के भाषण में भी प्रधानमंत्री ने निजी फ़ार्मा कम्पनियों के लिए पहले से जारी 2000-4000% मुनाफ़ा संरक्षित करने का पूरा बन्दोबस्त किया है, जो इस महामारी के बीच जनता के साथ किये जाने वाले अपराध से कम नहीं है।

जब तक कि सरकार इन निजी कम्पनियों से पूरी 100% वैक्सीन नहीं ख़रीदती, इन्हें उत्पादन का तय टारगेट देकर वैक्सीन उत्पादन की गति को कई गुना तक नहीं बढ़ाती, और फ़ार्मा कम्पनियों द्वारा उस टारगेट को पूरा न कर पाने की सूरत में वैक्सीन फ़ैक्ट्रियों को अपने हाथ में लेकर उत्पादन ख़ुद नहीं शुरू करती, तब तक भारत की वैक्सीन नीति इसी तरह निष्प्रभावी रहेगी। पर ख़ुद निजी फ़ार्मा कम्पनियों व कॉर्पोरेट के पैसे के बल पर सत्तासीन हुई, उन्हीं की सरकार से इसकी उम्मीद क्या ही की जाये?

वैश्विक स्तर पर भी यह वैक्सीन संकट हमें यही सबक़ देता है कि साम्राज्यवादी ताक़तों द्वारा नियंत्रित ग्लोबल सप्लाई चेन हमेशा ग़रीब मुल्कों को उनकी बुनियादी इंसानी ज़रूरतों से भी वंचित ही रखेगा और उनके लिए भीषण आपदा और संकट ही लेकर आता रहेगा। **मुनाफ़ाख़ोर कम्पनियों की दया पर टिके शोध कार्य और विज्ञान को जब तक मुनाफ़े की जंजीरों से आज़ाद नहीं किया जायेगा, तब तक विज्ञान समाज की ज़रूरतों को पूरा करने में अक्षम और निष्प्रभावी सिद्ध होता रहेगा, व उसका फ़ायदा सिर्फ़ धन्नासेठों की तिजोरी भरने के लिए होता रहेगा।**

जन्मदिवस (14 जून) के अवसर पर क्यूबा की क्रान्ति के नायक चे ग्वेरा को याद करते हुए कुछ कविताएँ

चे कमांडेंट

– निकोलस गिएन
(1902-1989), क्यूबा के राष्ट्रकवि

यद्यपि बुझा दिया है तुमने अपना आलोक
तब भी म्लान नहीं हुआ वह थोड़ा-सा भी।
एक अग्नि अश्व ने सम्भाल रखा है
तुम्हारी गुरिल्ला प्रस्तर-प्रतिमा को
सिएरा की हवाओं और मेघों के बीच में।
हालाँकि अब भी मौन नहीं हो तुम
भले ही वे जलाते हैं तुमको
दफ़्न कर देते हैं ज़मीन के अन्दर,
वे छिपा देते हैं तुम्हें
किसी क़ब्रिस्तान में, जंगल में, पठारों में,
पर वे रोक नहीं पाते तुम्हें ढूँढने से हमें
चे कमांडेंट, दोस्त!

जहाँ तक उनकी सोच कभी नहीं जायेगी

– इलीसिओ दिएगो
(1920-1994), क्यूबा, 1993 के जुआन रुल्फ़ो पुरस्कार विजेता कवि

आज ही हमें बताया गया है
कि तुम सचमुच मर चुके हो,
कि तुम जा चुके हो वहाँ
अन्ततः जहाँ ले जाना चाहते थे वे तुम्हें
वे भूल कर रहे हैं
हमसे कहीं ज़्यादा, यह मानकर
कि तुम एक धड़ हो शुद्ध संगमरमर के
जड़ीभूत इतिहास में,
जहाँ कोई भी
खोज सकता है तुम्हें।
जबकि तुम
कभी कुछ भी नहीं थे सिवाय आग के
सिवाय प्रकाश के, हवा के सिवाय,
अमेरिकी महाद्वीप की स्वाधीनता के सिवाय
हर कहीं के लिए प्रेरणा-पुंज
जहाँ तक उनकी सोच
कभी जा ही नहीं सकती, चे ग्वेरा

चे ग्वेरा की अन्तिम यात्रा

– विसेन्ट अलेक्सान्द्रे
(1898-1984), स्पेन, 1977 के नोबेल पुरस्कार विजेता कवि

कौन
हिलाता है
मरु
छायाओं को?
हवाएँ धधकती हैं।
चाँद
लाल भभूका,
प्रसिद्ध
रात
प्रकाशहीन अब भी
अपलक दृष्टि
अन्तिम है।
सुन्दर हैं आँखें।
चेहरा,
निद्रामग्न
वह बहता है
निर्मल से होकर
ले जाता हुआ विस्तार को
कितना विस्तृत और सुदीर्घ...!
और कि फ़तह के बाद
आ गये थे चिल्लाने वाले
भरे थे मुँह जिनके
दम्भ और लार में लिपटी शेख़ियों से।
लोगों ने झुका दिये थे अपने शीश :
और नायक लौट गया था अपनी ख़ामोशी में।
किन्तु यह ख़ामोशी
लिपटी हुई थी शोक में
तब तक डूबे रहे हम सन्ताप में,
जब तक कि ख़ाक नहीं हो गये पहाड़
ग्वेरा की शानदार आग में।

एक नायक की मौत पर अफ़सोस

– पाब्लो नेरूदा
(चीले, 1904-1973), 1971 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित कवि

वे जिन्होंने जिया इस वृत्तान्त को,
इस मौत और शोकाकुल आशा के पुनरुत्थान को,
वे जिन्होंने चुना संग्राम को
और देखा परचम का उत्कर्ष,
हमने जाना कि सबसे अधिक शान्त
हमारे वे नायक ही थे

चे ग्वेरा के एक चित्र पर संक्षिप्त चिन्तन

– होसे सारामागो
(1922-2010), पुर्तगाल, नोबेल पुरस्कार से सम्मानित कवि

चे ग्वेरा,
काश यह कहना मुमकिन होता,
वह मौजूद था पैदा होने से पहले भी,
चे ग्वेरा,
काश इसकी पुष्टि हो पाती कि
वह ज़िन्दा ही रहा अपनी मौत के बाद भी।
क्योंकि चे ग्वेरा महज़ एक और नाम है
उस मनुष्यता का जो सबसे अधिक
सच्ची और गुणसम्पन्न है
अक्सर सुप्त पड़ी रहती है हमारे भीतर जो
जिसे जानने के लिये हमें जागना ही चाहिये
और जानने के लिये ख़ुद को भी :
ताकि बढ़ सकें मिलकर क़दम हमारे
समष्टि के हित की ओर।

मेरा एक भाई

– जूलियो कोर्तज़र
(1914-1984), बेल्जियम, 'हॉप्स्कॉच' के रचयिता

हमने नहीं देखा कभी एक-दूसरे को
पर इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता।
मेरा एक भाई था
जो ख़ाक छान रहा था पहाड़ों की
जब सोया पड़ा था मैं।

(अंग्रेज़ी से अनुवाद : राजेश चन्द्र)

मेहनतकश जनता के सच्चे लेखक
मक्सिम गोर्की के स्मृति दिवस पर
एक साहित्यिक परिचय

● राजकुमार

दुनिया में ऐसे लेखकों की कमी नहीं, जिन्हें पढ़ाई-लिखाई का मौक़ा मिला, पुस्तकालय मिला, शान्त वातावरण मिला, जिसमें उन्होंने अपनी लेखनी की धार तेज़ की। लेकिन बिरले ही ऐसे लोग होंगे जो समाज के रसातल से उठकर आम-जन के सच्चे लेखक बने। मक्सिम गोर्की ऐसे ही लेखक थे।

मक्सिम गोर्की **(28 मार्च 1868 – 18 जून 1936)** को पूरी दुनिया में महान लेखक और समाजवादी यथार्थवाद के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। रूस में ज़ारशाही के दौरान 1907 में हुई असफल क्रान्ति से लेकर 1917 में हुई अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति और उसके बाद के समाजवादी निर्माण तक के लम्बे दौर में मक्सिम गोर्की ने अपनी कहानियों, नाटकों, लेखों और उपन्यासों के माध्यम से हर क़दम पर जनता को अपनी परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा दी। वह अपने समय में दबी-कुचली जनता के आत्मिक जीवन के भावों की आवाज बनकर उभरे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर अक्टूबर क्रान्ति के बाद लगभग 40 वर्षों के दौरान गोर्की अपनी कलम से रूसी साहित्य और जनता में बदलाव के लिए एक नई ऊर्जा का संचार करते रहे। साथ ही उनका सारा सृजन भी जनता के जीवन और संघर्षों से करीब से जुड़ा रहा।

समाज के दबे कुचले वर्गों से बचपन से ही जीवन्त सम्पर्क में रहने वाले गोर्की के लेखन को उनके जीवन और उस समय के रूसी समाज के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनके साहित्यिक सृजन का स्रोत क्या था। गोर्की के माता-पिता बचपन में नहीं रहे थे और उनका बचपन अपनी नानी के यहाँ बीता जहाँ उन्हें एक रूसी मध्यवर्गीय पारिवारिक माहौल मिला। नानी की मृत्यु के बाद सम्पत्ति को लेकर परिवार में लड़ाई-झगड़े होने लगे जिसके बाद गोर्की ने 13 साल की उम्र में घर छोड़ दिया और कई जगह काम बदलते हुए रूस के कई हिस्सों में घूमते रहे। इस दौरान उन्हें समाज को और करीब से देखने का मौका मिला और वह कई प्रकार के लोगों के सम्पर्क में आये। इस तरह गोर्की बचपन से ही एक मज़दूर के रूप में पले-बढ़े और घरों में काम करने से लेकर बेकरी के कारखानों, जहाज़ों, नमक के कारख़ानों और खेतों में खटने सहित तरह-तरह के कामों में उनका बचपन मेहनत और संघर्ष करते हुए बीता।

आने वाले समय में बचपन के ये अनुभव ही उनकी साहित्यिक रचनाओं का आधार बने और वह जनता के मुक्ति संघर्ष का हिस्सा बनकर उभरे। अपने पूरे साहित्यिक सृजन में गोर्की ने रूसी जीवन की कड़वी सच्चाई का यथार्थवादी चित्रण किसी व्यक्ति के दृष्टिकोण से नहीं किया है, बल्कि वह उन परिस्थितियों को बदलने के लिए एक प्रेरणास्रोत की तरह पाठक के सामने उपस्थित होते हैं। गोर्की के शब्दों में, **"सत्य दया से अधिक महत्व रखता है। और आज मैं अपनी नहीं, वरन् दम घोंटनेवाले उस भयंकर वातावरण की कहानी लिखने बैठा हूँ, जिसमें साधारण रूसी जनता रहा करती थी और आज भी रहती है।" "पुरानी दुनिया अवश्य ही जानलेवा रोग से ग्रस्त है और हमें उस संसार से शीघ्रातिशीघ्र पिण्ड छुड़ा लेना चाहिये ताकि उसकी विषैली हवा कहीं हमें न लग जाये।"**

बचपन में समय-समय पर गोर्की का परिचय उस समय के रूस में जारशाही निरंकुशता एवं दमन उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष करने वाले क्रान्तिकारियों से होता रहा, जिनके जीवन का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा, *"उन अनगिनत लोगों में से पहले व्यक्ति से मेरी मित्रता का अन्त हुआ, जो देश के सर्वश्रेष्ठ सपूत होते हुए भी अपने ही वतन में अजनबी से हैं.."*। इन लोगों के सम्पर्क ने गोर्की को किताबों से परिचित कराया। गोर्की की जीवन परिस्थितियों ने उन्हें किसी स्कूल या विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं दिया, लेकिन उन्होंने स्वाध्याय और जनता से जुड़े रहकर प्राप्त अनुभव को अपनी शिक्षा का केन्द्र बनाया। गोर्की के शब्दों में, *"मैं अपनी उपमा मधुमक्खी के छत्ते से दे सकता हूँ, जिसमें देश के अगणित साधारण प्राणियों ने अपने ज्ञान और दर्शन का मधु लाकर संचित किया है। सबों की बहुमूल्य देन से मेरे चरित्र का विकास हुआ। अक्सर देने वाले ने गन्दा और कड़वा मधु दिया, फिर भी था तो वह ज्ञान-मधु ही।"*

गोर्की अपने बचपन में ही ज़ारशाही काल में रूसी जनता की ग़रीबी और उत्पीड़न को देख चुके थे और इस सच्चाई से अवगत हो चुके थे कि किस तरह उस समाज में एक बड़े हिस्से को दबे-कुचले तबकों के रूप में रहने और जानवरों की तरह जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर किया गया था, *"मैं उनके बीच अपने आप को जलते अंगारों में डाल दिये गये जलते लोहे के टुकड़े की तरह महसूस करता था – हर रोज़ मुझे अनेक तीखे अनुभव प्राप्त होते। मानव अपनी सम्पूर्ण नग्नता के साथ सामने आता था – स्वार्थ और लोभ का पुतला बनकर। जीवन के प्रति उनका क्रोध, दुनिया की हर चीज के प्रति उनका उपहासजनक शत्रुता का भाव और साथ ही अपने प्रति उनका फक्कड़पन -"*

अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ में ही गोर्की का परिचय तोलस्तोय और चेखव जैसे रूस के महान यथार्थवादी लेखकों से हुआ। गोर्की शुरुआती दिनों से ही क्रान्तिकारी आन्दोलनों से जुड़े रहे। बाद में कम्युनिस्ट पार्टी बोल्शेविक में शामिल होकर जनता के संघर्षों में काफ़ी करीब से जुड़ गये और इसी दौरान उन्होंने पार्टी में शामिल मज़दूरों और क्रान्तिकारियों के जीवन और संघर्ष पर आधारित अपना विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'माँ' (1906) लिखा जिसके बारे में लेनिन ने कहा था कि इसे पढ़कर उन सभी मजदूरों को क्रान्ति के उद्देश्यों को समझने में मदद मिलेगी जो स्वतःस्फूर्त ढंग से आन्दोलन में शामिल हो गये हैं।

आज भी, जबकि पूरी दुनिया के मजदूर आन्दोलन ठहराव के शिकार हैं और प्रगति पर गतिरोध की स्थिति हावी है, ऐसे में गोर्की के उपन्यास और कहानियाँ पूरी दुनिया की जनता के संघर्षों के लिए अत्यन्त प्रासंगिक हैं। आज भी उनकी रचनाएँ पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता को एक समतावादी समाज के निर्माण के लिए उठ खड़े होने और परिस्थितियों को बदल डालने के लिए संघर्ष करने, क्रन्तिकारी इच्छाशक्ति पैदा करने और सर्वहारा वर्ग चेतना को विकसित करने की प्रेरणा देती हैं। गोर्की का साहित्य हमारे मन में वर्तमान समाज में जनता की बदहाल परिस्थितियों के प्रति नफ़रत ही नहीं बल्कि उन परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने और उन्हें बदलने की इच्छा भी पैदा करता है।

गोर्की के उपन्यास 'माँ' में एक मज़दूर कहता है, **"क्या हम सिर्फ़ यह सोचते हैं कि हमारा पेट भरा रहे? बिल्कुल नहीं" "हमें उन लोगों को जो हमारी गर्दन पर सवार हैं और हमारी आँखों पर पट्टियाँ बाँधे हुए हैं, यह जता देना चाहिए कि हम सब कुछ देखते हैं। हम न तो बेवकूफ़ हैं और न जानवर कि पेट भरने के अलावा और किसी बात की हमें चिन्ता ही न हो। हम इंसानों का सा जीवन बिताना चाहते हैं! हमें यह साबित कर देना चाहिए कि उन्होंने हमारे ऊपर ख़ून-पसीना एक करने का जो जीवन थोप रखा है, वह हमें बुद्धि में उनसे बढ़कर होने से रोक नहीं सकता!"**

गोर्की ने रूस की दलित-उत्पीड़ित जनता का जीवन जितने क़रीब से देखा था उतने ही स्पष्ट रूप से उसको अपने साहित्य में चित्रित किया और व्यापक जनसमुदाय को शिक्षित करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। अपने आत्मकथात्मक उपन्यास में गोर्की ने लिखा है, **"दुनिया में अन्य कोई चीज़ आदमी को इतने भयानक रूप से पंगु नहीं बनाती जितना कि सहना और परिस्थितियों की बाध्यता स्वीकार कर उनके सामने सिर झुकाना।"** गोर्की ने अपनी कहानियों, नाटकों, उपन्यासों और लेखों के माध्यम से समाज को सिर्फ़ चित्रित ही नहीं किया बल्कि उन्हें एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया।

अपने उपन्यास **'जीवन की राहों पर'** में वे कहते हैं: *"क्या यह ज़रूरी है कि इस हद तक घिनौनी बातों का वर्णन किया जाये? हाँ, यह ज़रूरी है! यह इसलिए ज़रूरी है श्रीमान, कि आप धोखे में न रहें, कहीं यह न समझने लगें कि इस तरह की बातें केवल बीते ज़माने में हुआ करती थीं! आज भी आप मनगढ़न्त और काल्पनिक भयानकताओं में रस लेते हैं, सुन्दर ढंग से लिखी भयानक कहानियाँ और क़िस्से पढ़ने में आपको आनन्द आता है। रोंगटे खड़े कर देने वाली कल्पनाओं से अपने हृदय को सनसनाने और गुदगुदाने से आप जरा भी परहेज़ नहीं करते। लेकिन मैं सच्ची भयानकताओं से परिचित हूँ, आये दिन के जीवन की भयानकताओं से, और यह मेरा अवंचनीय अधिकार है कि इनका वर्णन करके आपके हृदयों को मैं कुरेदूँ, उनमें चुभन पैदा करूँ ताकि आपको ठीक-ठीक पता चल जाये कि किस दुनिया में और किस तरह का आप जीवन बिताते हैं। कमीना और गन्दगी से भरा घिनौना जीवन है यह जो हम सब बिताते हैं। यही असल बात है! मैं मानव-जाति से प्रेम करता हूँ और चाहता हूँ कि उसे किसी भी तरह से दुःख न पहुँचाऊँ, परन्तु इसके लिए न तो हमें भावुकता का दामन पकड़ना चाहिए और न ही चमकीले शब्द-जाल और खूबसूरत झूठ की टट्टी खड़ी करके जीवन के भयानक सत्य को हमें छिपाना चाहिए! ज़रूरी है कि हम जीवन की ओर मुँह करें और हमारे हृदय तथा मस्तिष्क में जो कुछ भी शुभ और मानवीय है, उसे जीवन में उँड़ेल दें।"*

भौतिकवादी होने के नाते गोर्की मनुष्यों के स्वभाव के लिए परिस्थितियों को ज़िम्मेदार मानते थे और इसलिए वह जीवन की भौतिक परिस्थितियों को बदलने पर जोर देते थे, *"रूसी अपनी ग़रीबी और नीरसता के कारण ऐसा करते हैं। व्यथा और रंज उनके मनबहलाव के साधन हैं।" "जब जीवन की धारा एकरस बहती है तो विपत्ति भी मन बहलाने का साधन बन जाती है। घर में आग लग जाना भी नवीनता का रस प्रदान करता है।"*

गोर्की ने अपने समय के सामाजिक जीवन की आलोचना के साथ ही वर्ग समाज में चौतरफ़ा मची होड़ में लगे मनुष्यों के व्यक्तित्व के विघटन पर भी पैनी नज़र डाली। उनका मानना था कि जब तक मेहनत करने वालों की मेहनत को कुछ परजीवी हड़पते रहेंगे तब तक समाज में शान्ति नहीं हो सकती। अपने एक लेख में वे कहते हैं: *"समूचे वातावरण में एक-दूसरे को भक्षण करने की एक अराजक प्रक्रिया निरन्तर लागू है; सभी मनुष्य एक दूसरे के दुश्मन हैं; अपना-अपना पेट भरने की इस गन्दी लड़ाई में भाग लेने वाला हर आदमी सिर्फ़ अपनी ही सोचता है और अपने चारो ओर सन्देह की दृष्टि से देखता है, ताकि पड़ोसी कहीं उसका गला न धर दबोचें। थकाने वाली इस पाशविक लड़ाई के*

(पेज 22 पर जारी)

कल और आज – मक्सिम गोर्की

बीता कल महान झूठ का दिन था – उसकी सत्ता का अन्तिम दिन

युगों-युगों से इन्सान मकड़ी की तरह, यत्नपूर्वक, तार-दर-तार, पूरी सावधानी से सांसारिक जीवन का मज़बूत मकड़जाल बुनता गया, और झूठ व लालच से इसके पोर-पोर को अधिकाधिक सिक्त करता गया। इन्सान अपने सगे-सहोदर इन्सानों के रक्त-मांस पर पलता रहा। उत्पादन के साधन इन्सानों के दमन का साधन थे – इस मानवद्वेषी झूठ को निर्विकल्प, निर्विवाद सत्य समझा जाता रहा।

और कल यह रास्ता मानवजाति को विश्वयुद्ध के पागलपन तक ले गया। इस दुःस्वप्न की लाल दमक में इस पुरातन झूठ की घिनौनी नग्नता बेनक़ाब हो गयी। अब हम ध्वस्त हो चुकी पुरानी दुनिया को देख सकते हैं। इसके पुराने रहस्य उघड़ चुके हैं और आज अन्धों तक की आँखें खुल गयी हैं और वे अतीत की अवर्णनीय कुरूपता को देख रहे हैं।

आज उस झूठ का हिसाब लगाने का दिन है जो कल राज कर रहा था।

जनता के सब्र के उग्र विस्फोट ने जीवन के जीर्ण-शीर्ण निज़ाम को ध्वस्त कर दिया है और अब वह अपने पुराने रूप में दुबारा कभी स्थापित नहीं हो सकता। पुराने जीर्ण-शीर्ण अतीत का पूरी तरह नाश नहीं हुआ है, लेकिन आने वाले कल में यह हो जायेगा।

आज काफ़ी ख़ौफ़ छाया हुआ है लेकिन यह स्वाभाविक है और इसे समझा जा सकता है। क्या यह स्वाभाविक नहीं है कि पुरानी व्यवस्था के तेज़ ज़हर – शराब और सिफ़लिस – से ग्रस्त लोग उदार नहीं हो सकते? क्या यह स्वाभाविक नहीं कि लोग आज भी चोरी करेंगे – अगर चोरी ही कल का बुनियादी नियम रही है? क्या यह स्वाभाविक नहीं है कि दसियों, सैकड़ों, हज़ारों लोग मारे जायेंगे, अगर वे बरसों से दसियों लाख की तादाद में मारे जाने के आदी हो गये हैं? आज का बोया बीज कल की फ़सल बनता है।

हमें समझना चाहिए कि आज की गर्द और कीचड़ और अव्यवस्था के बीच अतीत के मज़बूत, लौह जाल से मानवजाति की मुक्ति का महान कार्य शुरू हो चुका है। यह बच्चे के प्रसव जितना ही कठिन और पीड़ादायक है; लेकिन यह कल की बुराई की मृत्यु है, जो कल के मानव के साथ अपनी अन्तिम साँसें ले रही है।

ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि न्याय की जीत की निर्णायक लड़ाई में आगे बढ़ रहे लोगों का नेतृत्व सबसे कम अनुभवी और सबसे कमज़ोर योद्धा, यानी रूसी मेहनतकश, कर रहे हैं – एक पिछड़े देश के लोग, दूसरे किसी भी देश के मुक़ाबले अपने अतीत की मार से बहुत अधिक जर्जर। अभी कल तक सारी दुनिया उन्हें अर्द्धबर्बर के रूप में देखती थी, और आज प्रायः भूख से मरते हुए वे पुराने और अनुभवी सैनिकों के पूरे जोशो-ख़रोश और साहस से जीत या मृत्यु की ओर आगे बढ़ रहे हैं।

हर उस आदमी को जो सच्चे मन से यक़ीन करता है कि स्वतन्त्रता, सुन्दरता और तर्कसंगत जीवन जीने की मानवजाति की आकांक्षा बेकार का सपना नहीं, बल्कि वह असली ताक़त है जो जीवन के नये-नये रूपों का सृजन कर सकती है, एक ऐसा उत्तोलक है जो पूरी दुनिया को उठा सकता है – ऐसे हर ईमानदार आदमी को आज रूस के उत्कट क्रान्तिकारियों द्वारा की जा रही गतिविधियों के सार्वत्रिक महत्व को स्वीकारना ही चाहिए।

क्रान्ति की व्याख्या मानवजाति के शिक्षकों द्वारा प्रणीत और प्रतिपादित महान विचारों और धारणाओं को जीवन में समाहित करने की दिशा में किये गये एक महान प्रयास के रूप में की जानी चाहिए। कल तक यूरोप के समाजवादी विचार रूसी जनता का मार्गदर्शन करते थे; आज रूस का मेहनतकश यूरोपीय विचारों की विजय के लिए उत्कट प्रयास कर रहा है।

अगर दुश्मनों से घिरे, भूख से निढाल, और संख्या में कम, ईमानदार रूसी क्रान्तिकारी पराजित हो जाते हैं तो इस भीषण विपदा की ज़िम्मेदारी यूरोप के पूरे मेहनतकश वर्ग के कन्धों पर भारी पड़ेगी।

रूसी मज़दूर को यक़ीन है कि उसके आत्मिक भाई-बन्धु रूसी क्रान्ति का गला घोंटने की इजाज़त नहीं देंगे, कि वे उस पुरानी व्यवस्था को नया जीवनदान दिये जाने की इजाज़त नहीं देंगे जो मर रही है, और जो तिरोहित हो जायेगी – बशर्ते कि यूरोप का क्रान्तिकारी विचार आज के महती कार्यभारों को समझे।

आइये और हमारे साथ नये जीवन की तरफ़ प्रयाण कीजिये, जिसे सिरजने का काम हम कर रहे हैं, और इसके लिए न ख़ुद को रत्तीभर छूट दे रहे हैं और न ही किसी व्यक्ति या किसी चीज़ के साथ ढिलाई बरत रहे हैं। श्रम के महान आनन्द और प्रगति की ज्वलन्त कामना में चूकें करते, यातनाएँ सहते, अपने कार्यों की ईमानदार विवेचना का काम हम इतिहास पर छोड़ते हैं। पुरानी व्यवस्था के ख़िलाफ़ संघर्ष में और नयी व्यवस्था लाने के हमारे उद्यम में हमारा साथ दें। मुक्त और सुन्दर जीवन की ओर आगे बढ़ें!

(गोर्की ने इसे 1917 की अक्टूबर क्रान्ति के तुरन्त बाद लिखा था)

मेहनतकश जनता के सच्चे लेखक मक्सिम गोर्की

(पेज 21 से आगे)

भँवर में फँसकर बुद्धि की श्रेष्ठतम शक्तियाँ दूसरों से अपनी रक्षा करने में ही नष्ट हो जाती हैं, मानव अनुभव की वह उपलब्धि जिसे "मैं" कहते हैं, एक अँधेरा तहखाना बन जाती है जिसके अन्दर अनुभव को और अधिक समृद्ध न करने और पुराने अनुभव को तहखाने की दम घोंटनेवाली कोठरियों में बन्द रखने की क्षुद्र प्रवृत्तियाँ हावी रहती हैं। भरे पेट के अलावा आदमी को और क्या चाहिए? इस लक्ष्य को पाने के लिए मनुष्य अपने उच्चादर्शों से फिसलकर गिर गया है और ज़ख्मी होकर आँखें फाड़े, पीड़ा से चीखता और कराहता नीचे पड़ा है।"

पूँजीवादी समाज की संस्कृति से रोम-रोम से नफ़रत करने वाले गोर्की का कहना था, *"पूँजीवादी समाज में कुल मिलाकर मनुष्य अपनी अद्भुत सामर्थ्य को निरर्थक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बर्बाद करता है। अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए उसे गली में हाथों के बल चलना पड़ता है, द्रुतगति के ऐसे रिकार्ड स्थापित करने पड़ते हैं जिनका कुछ कम या कुछ भी व्यावहारिक मूल्य नहीं होता, एक ही वक्त में बीसियों लोगों के साथ शतरंज के मैच खेलने, अद्भुत कलाबाज़ियाँ खाने और काव्य-रचना के झूठे चमत्कार प्रदर्शित करने पड़ते हैं, और साधारणतया हर प्रकार की ऐसी बेसिरपैर की हरकतें करनी पड़ती हैं जिनसे उकताए तथा ऊबे हुए लोगों को पुलकित किया जा सके।"*

जनता के मुक्तिसंघर्ष में पूरा विश्वास रखने वाले और एक क्रान्तिकारी के रूप में उस संघर्ष में शामिल रहते हुए जीवन के प्रति गोर्की का दृष्टिकोण आशावाद और जनता में दृढ़ विश्वास से भरा हुआ था, **"हमारे जीवन की यही विलक्षणता नहीं है कि वह बर्बरता और पाशविकता की मोटी तह में लिपटा हुआ है, बल्कि यह कि इस तह के नीचे से आलोकमय, सबल, सृजनात्मक और भलाई की शक्तियाँ विजयी होकर बाहर आ रही हैं और यह दृढ़ आशा पैदा कर रही हैं कि वह दिन दूर नहीं, जब हमारे देश की जनता के जीवन में सौन्दर्य एवं आलोकपूर्ण मानवता का सूर्य उगेगा और अवश्य उगेगा।"**

गोर्की का पूरा जीवन और उनका साहित्यिक कार्य पूरी दुनिया के मज़दूरों के लिए प्रेरणास्रोत है, और अन्याय के विरुद्ध कदम-कदम पर हमें संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करता है। अक्टूबर क्रान्ति के बाद सोवियत यूनियन में गोर्की अपने अन्तिम दिनों तक समाजवादी खेमे के अनेक युवा लेखकों का जोश के साथ नेतृत्व कर रहे थे। 'अग्नि-दीक्षा' उपन्यास के लेखक निकोलाई आस्त्रोवस्की ने 1936 में गोर्की के बारे में लिखा, "हमारी टुकड़ी का कमाण्डर ऊँचे कद का, सफ़ेद बालों वाला कमाण्डर – प्रसिद्ध और सम्मानप्राप्त, अपनी कला में सिद्धहस्त अपनी मूँछों पर हाथ फेरते हुए, धीरे से बड़े गम्भीर लहज़े में कहता है: 'इन घिसटनेवालों का क्या करूँ? पीछे कहीं बैठे नाश्ता कर रहे होंगे – अगले दस्ते से कहीं 50 मील पीछे होंगे। उनकी पाकशाला पीछे कहीं दलदल में धँस गई है। मेरे सफ़ेद बालों को ये लज्जित कर रहे हैं।' यह मज़ाक है ज़रूर, मगर एक कड़वा मज़ाक, इसमें सचाई कम नहीं।"

अन्त में गोर्की के ही शब्दों में, *"मेरे लिए मानव से परे विचारों का कोई अस्तित्व नहीं है। मेरे नज़दीक मानव तथा एकमात्र मानव ही सभी वस्तुओं और सभी विचारों का निर्माता है। चमत्कार वही करता है और वही प्रकृति की सभी भावी शक्तियों का स्वामी है। हमारे इस संसार में जो कुछ अति सुन्दर है उनका निर्माण मानव श्रम, और उसके कुशल हाथों ने किया है। हमारे सभी भाव और विचार श्रम की प्रक्रिया में उत्पन्न होते हैं और यह ऐसी बात है, जिसकी कला, विज्ञान तथा तकनीक का इतिहास पुष्टि करता है। विचार तथ्य के पीछे चलता है। मैं मानव को इसलिए प्रणाम करता हूँ कि इस संसार में कोई ऐसी चीज नहीं दिखाई देती जो उसके विवेक, उसकी कल्पनाशक्ति, उसके अनुमान का साकार रूप न हो।"*

"यदि "पावन" वस्तु की चर्चा आवश्यक ही है, तो वह है अपने आप से मानव का असन्तोष, उसकी यह आकाँक्षा कि वह जैसा है उससे बेहतर बने। ज़िन्दगी की सारी गन्दगी के प्रति जिसे उसने स्वयं जन्म दिया है, उसकी घृणा को मैं पवित्र मानता हूँ। ईर्ष्या, धनलिप्सा, अपराध, रोग, युद्ध तथा संसार में लोगों के बीच शत्रुता का अन्त करने की उसकी इच्छा और उसके श्रम को पवित्र मानता हूँ।"

गोर्की ने अपने जीवन और लेखन से सिद्ध कर दिया कि दर्शन और साहित्य विश्वविद्यालयों, कॉलेजों में पढ़े-लिखे विद्वानों की बपौती नहीं है बल्कि सच्चा साहित्य आम जनता के जीवन और लड़ाई में शामिल होकर ही लिखा जा सकता है। उन्होंने अपने अनुभव से यह जाना कि अपढ़, अज्ञानी कहे जाने वाले लोग ही पूरी दुनिया के वैभव के असली हक़दार हैं। आज एक बार फिर साहित्य आम जन से दूर होकर महफ़िलों, गोष्ठियों यहाँ तक कि सिर्फ़ लिखने वालों तक सीमित होकर रह गया है। आज लेखक एक बार फिर समाज से विमुख होकर साहित्य को आम लोगों की ज़िन्दगी की चौहद्दी से बाहर कर रहा है। गोर्की जैसे लेखकों की अनमोल विरासत अगर तमाम पाठकों तक पहुँचेगी, तो यह हमारे साहित्य और समाज दोनों को नयी ऊष्मा से भर देगा।

गुज़रे दिन : कुछ कार्टूनिस्टों की नज़र में

मीर सुहैल

सतीश आचार्य

राजेन्द्र धोड़पकर

मंजुल

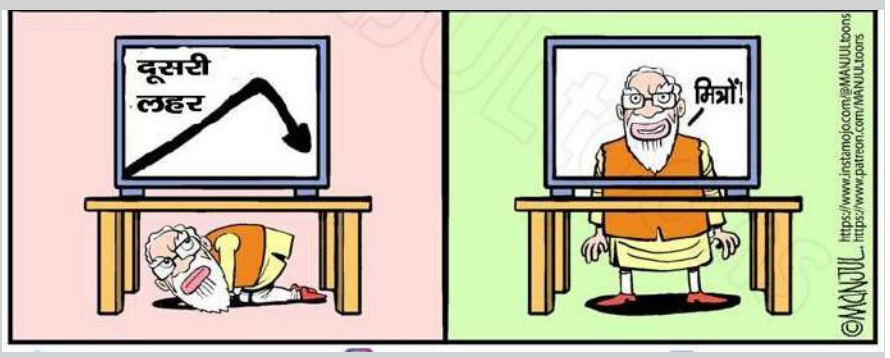

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

बोलते आँकड़े चीख़ती सच्चाइयाँ

बेरोज़गारी

● भारत में अर्थव्यवस्था के आँकड़ों पर नज़र रखने वाली प्रमुख संस्था, सेण्टर फ़ॉर मॉनीटरिंग इण्डियन इकोनॉमी के अनुसार इस साल केवल मई महीने में ही डेढ़ करोड़ से ज़्यादा लोगों ने रोज़गार गँवा दिया है। इस साल के शुरुआती पाँच महीनों में ही ढाई करोड़ से ज़्यादा लोग रोज़गार गँवा चुके हैं।

● कोरोना की पहली लहर के आगमन के पहले ही फ़रवरी 2020 में बेरोज़गारी दर 6.2 फ़ीसदी तक गिर चुकी थी। उसके बाद के लॉकडाउन में करोड़ों लोगों ने रोज़गार गँवाया और अप्रैल 2020 में बेरोज़गारी दर 24 फ़ीसदी तक पहुँच गयी। पिछले पूरे साल भर भी औसत बेरोज़गारी दर 6-7 प्रतिशत बनी रही। अब मई 2021 में देशव्यापी बेरोज़गारी दर 11.9 फ़ीसदी तक पहुँच गयी है।

● मई 2021 में शहरी क्षेत्र में बेरोज़गारी दर 14.73 प्रतिशत और ग्रामीण क्षेत्र में 10.63 प्रतिशत है। युवाओं और महिलाओं को कहीं बड़े स्तर पर बेरोज़गारी का सामना करना पड़ रहा है। 20 वर्ष की आयु से 24 वर्ष की आयु के अंतर्गत आने वाले शहरी युवाओं में 37.9 प्रतिशत युवा बेरोज़गार हैं।

● देश में काम करने वाले लोगों का वह प्रतिशत हिस्सा जो काम की तलाश कर रहा है, उसे 'श्रम बल भागीदारी दर' कहते हैं और इसमें से जितने प्रतिशत हिस्से को रोज़गार नहीं मिलता उससे बेरोज़गारी दर निकाली जाती है। कोरोना काल के बीते डेढ़ साल में लगातार श्रम बल भागीदारी में कमी आयी है। श्रम बल भागीदारी में कमी का मतलब है कि बहुत से लोग मौजूदा परिस्थितियों से हताश होकर रोज़गार की तलाश करना ही छोड़ दे रहे हैं। रोज़गार में बढ़ती कठिनाइयों के कारण बहुत सी महिलाओं ने रोज़गार की तलाश छोड़कर घर पर ही रुकना चुन लिया है और बहुत से पढ़े लिखे युवा व्यापक बेरोज़गारी के कारण कुछ समय के लिए कोई कोर्स इत्यादि करने लगे हैं। श्रम बल भागीदारी में लगातार आती कमी यह दर्शाती है कि रोज़गार मिलना और करना कितना कठिन हो चुका है।

● सेण्टर फ़ॉर मॉनीटरिंग इण्डियन इकोनॉमी द्वारा सभी वर्गों के 1.75 लाख परिवारों के सर्वे से यह भीपता चला है कि पिछले एक साल में 55 फ़ीसदी परिवारों की आमदनी घट गयी है। 42 फ़ीसदी परिवारों की आमदनी में कुछ ख़ास फ़र्क़ नहीं आया और केवल 3 फ़ीसदी परिवारों की आय बढ़ी है। अगर महँगाई दर को ध्यान में रखा जाये तो यह स्पष्ट है कि कोरोना काल में 97 प्रतिशत परिवारों की आमदनी कम हुई है।

महँगाई

● देश में ईंधन के दामों में पिछले पाँच महीनों में 43 बार बढ़ोत्तरी हुई है और 4 बार कटौती। देश के 135 ज़िलों में पेट्रोल 100 के पार पहुँच चुका है। केवल इसी साल पेट्रोल की क़ीमतों में 12.5 प्रतिशत और डीज़ल की कीमतों में 15.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। पेट्रोल की क़ीमत लगभग 10.7 रुपये और डीज़ल की क़ीमत 11.5 रुपये तक बढ़ चुकी है। अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में वर्ष 2013-14 की तुलना में कच्चा तेल सस्ता होता रहा, फिर भी पेट्रोल-डीज़ल इतने महँगे क्यों होते गये? क्योंकि इस दौरान पेट्रोलियम पदार्थों पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क में दोगुने से भी ज्यादा का इज़ाफ़ा हुआ है। पेट्रोल की क़ीमत का 58 फ़ीसदी और डीज़ल की क़ीमत का 52 फ़ीसदी, उत्पाद शुल्क, अधिभार और अन्य टैक्स हैं जो सरकार की तिजोरी में जाते हैं।

● पिछले पाँच माह में सरसों के तेल की क़ीमत दोगुनी हो गयी है। दिसम्बर 2020 में 120 रुपये प्रतिकिलो बिकने वाले सरसों के तेल की क़ीमत मार्च में 160 रुपये प्रतिकिलो और मई 2021 में 180 से 210 रुपये प्रति किलो के बीच पहुँच गयी है। कई ब्रांड के तेल तो 230 तक में बिक रहे हैं। सरसों की नई फसल आने के बाद भी कीमतें बढ़ती रही हैं। इसी तरह रिफ़ाइन तेल की क़ीमत में भी पिछले साल की तुलना में लगभग 68 रुपये का इज़ाफ़ा हुआ है। खाद्य तेलों की कीमतों में आयी यह बढ़ोत्तरी पिछले 11 साल में सबसे ज़्यादा है। दाल भी डेढ़ गुना महँगी हुई है और आलू, प्याज़, लहसुन सहित खाने-पीने की सभी चीज़ें महँगी हुई हैं। पिछले एक साल में रसोई की ज़रूरी खाद्य सामग्री में 40 से लेकर 100 फ़ीसदी तक उछाल आया है। इसके अलावा रसोई गैस की क़ीमत भी बढ़कर 900 रुपये प्रति सिलेंडर पहुँच चुकी है।

● अप्रैल 2021 के दौरान थोक महँगाई (WPI) दर बढ़कर 10.49 फ़ीसदी पर पहुँच गयी है जो अब तक का सर्वोच्च स्तर है। मैनुफ़ैक्चर्ड उत्पादों की थोक महँगाई दर 9.01 फ़ीसदी बढ़ी है और प्राथमिक उत्पादों की थोक महँगाई दर भी 10.16 फ़ीसदी तक बढ़ी है। वित्त वर्ष 2021-22 में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक आधारित मुद्रास्फ़ीति 5.1 फ़ीसदी पर रहने का अनुमान है। खुदरा बाज़ार की क़ीमतों में हुई असली बढ़ोत्तरी में थोक मूल्य आधारित महँगाई दर और उपभोक्ता मूल्य आधारित महँगाई दर को जोड़कर कम से कम 15 प्रतिशत का उछाल दिखाई दे रहा है। 1974 में जब महँगाई अपने चरम पर पहुँच गयी थी तब महँगाई दर 28.66 फ़ीसदी थी और 1973 में 16.94 फ़ीसदी थी।

स्वास्थ्य

● प्रसिद्ध मेडिकल पत्रिका 'लैंसेट' के एक अध्ययन के मुताबिक़, स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता और लोगों तक उनकी पहुँच के मामले में भारत विश्व के 195 देशों में 145वें पायदान पर है।

● पिछले दस वर्षों में स्वास्थ्य सेवाओं पर सरकार ने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का औसतन 1.1% से 1.5% तक खर्च किया। दूसरे देशों से तुलना करें तो क्यूबा में 11.74%, जर्मनी में 11.25%, फ्रांस में 11.31%, जापान में 9.2%, अमरीका में 8.5%, इंग्लैंड में 7.86%, आस्ट्रेलिया में 6.4%, ब्राज़ील में 3.96%, रूस में 3.16%, दक्षिण अफ्रीका में 4.46%, चीन में 3.02% जीडीपी का हिस्सा स्वास्थ्य सेवाओं पर ख़र्च किया जाता है। भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य पर ख़र्च होने वाला जीडीपी का प्रतिशत पिछले 10 वर्ष से ज़्यादा समय से 1% के आसपास ही बना हुआ है।

● स्वास्थ्य पर किये गये कुल ख़र्च का 27% हिस्सा ही सरकार द्वारा ख़र्च किया जाता है और लगभग 73% हिस्सा जनता को अपनी जेब से देना पड़ता है। जबकि डेनमार्क और स्वीडन जैसे देशों में निजी स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं पर किया जाने वाला ख़र्च मात्र 15-16% है।

● इस साल के आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया है कि यदि स्वास्थ्य सेवाओं पर सरकारी खर्च जीडीपी के 1-1.5% से बढ़ाकर 3-3.5% तक कर दिया जाये तो लोगों द्वारा स्वास्थ्य सेवाओं पर किया जाने वाला निजी ख़र्च 65-72% से घटकर 30-35% रह जायेगा।

● राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार सन् 2019 में 17% आत्महत्याओं का कारण बीमारी और उसका उपचार ना करवा पाने की लाचारी थी। 2001 से 2015 के बीच हुई आत्महत्याओं में 21% स्वास्थ्य सेवाओं की कमी के कारण हुई।

● पिछले दस सालों में लगातार 7% लोग इलाज के लिए कर्ज़ लेकर ना चुकाने की स्थिति में ग़रीबी रेखा के नीचे पहुँच जाते हैं। 2002 से 2012 के बीच ही स्वास्थ्य के कारण लिये गये कर्ज़ दोगुने हो गये थे। भारत में कुल बीमार लोगों में 23% बीमार लोग इलाज का खर्च उठा ही नहीं सकते हैं।

● भारत में 1456 लोगों पर 1 डॉक्टर है जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 1000 लोगों पर 1 डॉक्टर होना चाहिए। भारत में नर्स और आबादी का अनुपात 1:670 है जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार यह अनुपात 1:300 होना चाहिए। इनमें से भी ज़्यादातर डॉक्टर, नर्स आदि शहरों में हैं, गाँवों, छोटे क़स्बों आदि में इनकी भारी कमी है।

● भारत में हर 10 हज़ार की आबादी पर अस्पतालों के बेड की संख्या मात्र 5 है। इस मायने में बंगलादेश की हालत भी भारत से बेहतर है जहाँ प्रति 10 हज़ार की आबादी पर अस्पताल के 8 बेड हैं। केवल युगाण्डा, बुरकीना फ़ासो, ग्वाटेमाला और नेपाल जैसे देशों की हालत भारत से बदतर है।

● 70 फ़ीसदी स्वास्थ्य सेवाओं का बुनियादी ढाँचा देश के 20 बड़े शहरों तक ही सीमित है। देशभर में 30 फ़ीसदी लोग प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं तक से वंचित हैं।

अमीर-ग़रीब के बीच बढ़ती खाई

● ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट के अनुसार कोरोना काल के लॉकडाउन में भी भारत के चन्द अरबपतियों की सम्पत्ति में 35% तक वृद्धि हुई है। सन् 2009 से अब तक इन अरबपतियों की सम्पत्ति में 90% बढ़ोत्तरी हो चुकी है, यानी पिछले 12 साल में इनकी दौलत लगभग दोगुनी हो गयी है। सम्पत्ति बढ़ने में भारत के अरबपति अमरीका, चीन, फ्रांस, जर्मनी और रूस के बाद छठे स्थान पर हैं।

● महामारी के दौर में भारत के सबसे अमीर ग्यारह लोगों की सम्पत्ति में जितनी बढ़ोत्तरी हुई है, उससे मनरेगा द्वारा संचालित रोज़गार योजना और स्वास्थ्य मंत्रालय की सभी स्वास्थ्य सेवा योजनाओं को दस साल तक चलाया जा सकता है।

● देश के सबसे बड़े 100 पूँजीपतियों ने कोरोना काल के शुरुआती नौ महीनों में अपनी दौलत में 12.97 लाख करोड़ रुपये की बढ़ोत्तरी की। इस दौलत से भारत के सबसे ग़रीब तबक़े के हर व्यक्ति के हिस्से में 94 हज़ार रुपये जमा हो सकते हैं।

● दुनिया भर के अरबपतियों ने वैश्विक महामारी के दौरान अपनी सम्पत्ति में 3.9 लाख करोड़ डॉलर (यानी लगभग 280 लाख करोड़ रुपये) जोड़ लिए। विश्व भर के अरबपतियों की कुल सम्पत्ति 11 लाख करोड़ डॉलर है जो कि जी-20 देशों द्वारा महामारी में किये गये कुल ख़र्च के बराबर है।

● कोरोना वायरस महामारी के बीच वर्ष 2020 में भारत के 40 लोग अरबपतियों की सूची में शामिल हो गये। भारत में अब कुल अरबपतियों की संख्या बढ़कर 177 हो गयी है। मुकेश अम्बानी अभी भी 83 अरब डॉलर (यानी लगभग 5800 अरब रुपये) की सम्पत्ति के साथ सबसे अमीर भारतीय बने हुए हैं। 2020 के दौरान रिलायंस इण्डस्ट्रीज़ के मालिक की सम्पत्ति 24 प्रतिशत बढ़ी है और वह दुनिया के आठवें सबसे अमीर आदमी बन गये हैं। गुजरात के गौतम अडानी की सम्पत्ति 2020 में दोगुनी होकर 32 अरब डॉलर हो गयी है और वह दुनिया के 48वें सबसे अमीर और दूसरे सबसे अमीर भारतीय बन गये हैं। उनके भाई विनोद अडानी की सम्पत्ति भी 128 प्रतिशत बढ़कर 9.8 अरब डॉलर हो गयी है।

● मुकेश अम्बानी ने कोरोना के शुरुआती आठ महीनों में हर दिन 1,667 करोड़ रुपये कमाया। यानी हर घण्टे 70 करोड़ रुपये। दूसरी तरफ असंगठित क्षेत्र के जिन मज़दूरों के लिए न्यूनतम मज़दूरी 178 रुपये है, उन्हें इतना रुपया कमाने में 10,000 साल से ज़्यादा लगेंगे।

● ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट के अनुसार कोरोनावायरस आने के बाद दुनिया के 10 सबसे बड़े अरबपतियों ने जितनी सम्पत्ति बनायी है, वह दुनिया में हर किसी को ग़रीबी से बचाने और सबको कोविड-19 वैक्सीन फ़्री में देने के लिए काफ़ी है।

● भारतीय स्टेट बैंक की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि देश में इस साल लोगों ने 66,000 करोड़ रुपये अस्पतालों पर अतिरिक्त ख़र्च किये हैं। बेरोज़गारी, आय में कमी और स्वास्थ्य पर बढ़ते ख़र्च ने करोड़ों नये लोगों को ग़रीबी की ओर धकेल दिया है।

● भारतीय रिज़र्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार बैंक धोखाधड़ी में पिछले चार सालों में तीन गुना बढ़ोत्तरी हुई है। 2017-18 में 41,167 करोड़ रुपये के बैंक घोटाले दर्ज हुए जो 2020-21 में बढ़कर 1.38 लाख करोड़ हो गए। पिछले चार सालों में बैंक घोटालों में 4.37 लाख करोड़ रुपये डूब गये जिसकी भरपाई आम जनता ने की।

● कोरोना वायरस महामारी के दौरान वैश्विक गरीबी में जो बढ़ोतरी हुई, उसमें आधे से अधिक योगदान भारत का रहा।

● पिछले 4 साल में मोदी सरकार ने लगभग 7 लाख करोड़ रुपये के क़र्ज़ 'राइट ऑफ़' कर दिये यानी बट्टे खाते में डाल दिये। 2017-18 में 1.44 लाख करोड़, 2018-19 में 2.54 लाख करोड़, 2019-20 में 1.45 लाख करोड़ और 2020-21 में 1.53 लाख करोड़ रुपये के क़र्ज़ राइट ऑफ़ किये गये। बताने की ज़रूरत नहीं कि इसकी वसूली भी आम जनता को निचोड़कर ही की जा रही है।

– प्रस्तुति : पराग वर्मा

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006